Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

A Rajput Princess by birth, Mirabai forsook worldly pleasures to seek spiritual wealth. Deliberate persecution by her relatives did not deter her from leaving the ivory tower of the palace to join humble devotees in an all-absorbing religious life.

Suffering and personal tragedy must have deepened her religious feeling which found expression in her matchless bhajans, suffused with devotion, delicacy and sweetness.

For she drew, not upon learning but the fullness of her heart, to compose bhajans that have enshrined her in the hearts of countless millions.

Saints like Mirabai are gifted with universal love and compassion. To them, even inanimate objects become alive with God. They serve God through His creation — a service born of the conviction that the entire Universe is filled with God.

Sainthood is a universal phenomenon.

AIYARS.M.23

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

English

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

❋ सत्साहित्य पढ़िये ❋

पूज्यपाद अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज द्वारा विरचित एवं संस्था द्वारा प्रकाशित अनुपम आध्यात्मिक साहित्य

१. माण्डूक्य-प्रवचन (आगम प्रकरण) १०.००
२. माण्डूक्य-प्रवचन (वैतथ्य प्रकरण) ७.५०
३. माण्डूक्य-प्रवचन (अद्वैत प्रकरण) ४.५०
४. अपरोक्षानुभूति-प्रवचन ६.००
५. कठोपनिषद्-प्रवचन—१ ९.००
६. कठोपनिषद्-प्रवचन—२ १२.००
७. मुण्डकसुधा ३.७५
८. सांख्ययोग (दूसरा अध्याय) ९.७५
९. कर्मयोग (तीसरा अध्याय) ६.००
१०. ध्यानयोग (छठाँ अध्याय) ६.००
११. ज्ञान-विज्ञान-योग (सा. अ.) ६.००
१२. विभूतियोग (दसवाँ अ०) ५.२५
१३. भक्तियोग (बारहवाँ अ०) ६.००
१४. ब्रह्मज्ञान और उसकी साधना (ते० अ०) ९.७५
१५. नारद भक्ति दर्शन ९.००
१६. गोपियोंके पाँच प्रेम गीत ०.४०
१७. भागवत विचार दोहन ३.००
१८. भक्ति सर्वस्व ७.५०
१९. मोहन नी मोहिनी (गुज०) ०.६०
२०. श्रीमद्भागवत-रहस्य ३.७५
२१. आनन्दवाणी, भाग—७ १.५०
२२. श्री भक्तिरसायनम् १२.००
२३. श्री भक्तिरसायनप्रपा ३.००
२४. स्पन्दतत्त्व ०.४५
२५. साधना और ब्रह्मानुभूति ५.२५
२६. चरित्र निर्माण आणि ब्रह्मज्ञान (मराठी) १.५०
२७. महाराजश्रीका एक परिचय (गुजराती) १.९०
२८. महाराजश्रीका एक परिचय १.००
२९. आनन्दवाणी, भाग ५ (गु०) २.२५
३०. ज्ञान निर्झर ०.९०
३१. आत्मबोध ३.००
३२. कपिलोपदेश ३.७५
३३. व्यवहार और परमार्थ ३.७५
३४. मानव-जीवन और भागवत-धर्म ४.५०
३५. राम-शताब्दी-स्मृति २०.००
३६. माधुर्य लहरी २ ००
३७. माधुर्य-मञ्जूषा ३.००
३८. श्री उड़िया बाबाजी म० ५.००
३९. वेणुगीत ३.००
४०. ब्रह्मसूत्र-प्रवचन-(१) १०.००
४१. ब्रह्मसूत्र-प्रवचन-(२) १०.००
४२. माधुर्य मयंक ३.००
४३. माधुर्य मकरन्द ३.००
४४. विवेक कीजिये ५.५०
४५. Glimpses of Life Divine 1.50
४६. An Introduction to a Realised Soul 0.40
४७. Ideal and Truth 5.25

'चिन्तामणि'की १ से १० वर्षकी पुरानी फाइल उपलब्ध है।

— सत्साहित्य-प्रकाशन-ट्रस्ट —

'विपुल' २८/१६, बी० जी० खेर मार्ग, बम्बई—४००००६

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

फरवरी '७७
वर्ष : ११
अंक : २

स्वस्त्ययन

ॐ नम सखिभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमः
साकंनिषेभ्यः।
युञ्जे वाचं शतपदीम्॥
(सामवेद उत्तरार्चिक २०.६.७)

हमारे साथ वर्तमान, हमारे जैसे नामवाले, समान हृदयवाले, भगवद्भक्तोंको नमस्कार है। हमसे पहले अतीत कालमें हुए सत्पुरुषोंको नमस्कार है। जो वैदिक धर्मके आचार, विचार एवं प्रचारमें संलग्न हैं उन्हें नमस्कार है। मैं शत-शत नामवाले वचन एवं परमात्माका प्रतिपादन करनेके लिए वाणीका प्रयोग करता हूँ।

•

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS
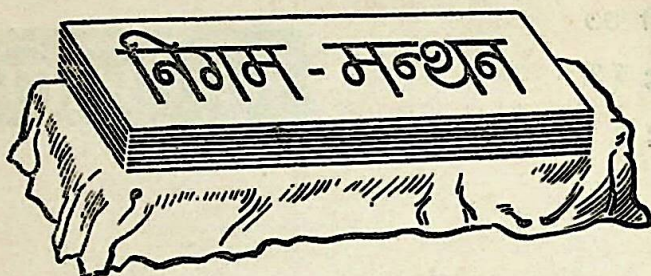
शिवसंकल्प-सूक्त-प्रवचन

-- अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज --

(पूर्वानुवृत्त)

● **संगति**

अबतक मनके सम्बन्धमें ये बातें कहीं :

—मन डूबता-उतराता है। अर्थात् उदय-अस्त होता है।

—यह आत्माश्रित है, अपनेमें ही उदय-विलय होता है।

दूरमुदैति अन्तिके चास्तमेति

—यह अपनेको ही प्रतीत होता है।

—इन्द्रियोंका स्वभाव केवल प्रत्यक्षमात्रको अनुभव करना है। नेत्र-कर्णादि सामनेकी वस्तु हीका प्रत्यक्ष करते हैं; किन्तु मन स्मृतिके रूपमें भूत और कल्पनाके रूपमें भविष्यको भी देखता है। वर्तमानको अपना-परायाका, उत्तम-कनिष्ठका भेदभाव करके देखता है। इन्द्रियाँ अपना-पराया, उत्तम-अधम, प्रिय-अप्रियका भेद नहीं देखतीं, यह मन देखता है।

—इन्द्रियाँ विषयानुभवको लाकर मनको ही अर्पित करती हैं।

—'दूरंगमः' भूत, भविष्य, वर्तमान, व्यवहित—सबको मन ही जाता है।

—इन्द्रियाँ अनेक हैं, मन एक है।

—सब इन्द्रियोंमें आकर मन ही जानता है।

—शरीरके साथ इन्द्रिय गोलक मर जाते हैं :—किन्तु मन नहीं मरता।

—मनसे ही कर्म होते हैं।

—मनसे ही बुद्धिमें युक्तिका उदय होता है। मनसे ही सहन-शक्ति आती है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

—मन अपूर्व यक्ष है अर्थात् अनिर्वचनीय है।

अब बतलाने जा रहे हैं कि ज्ञान भी मन ही है। ज्ञान दो प्रकारके हैं, १. जिसका उदय शब्द-प्रमाणसे ही होता है। २. जिसे इन्द्रियोंके द्वारा प्राप्त करते हैं।

यत्प्रज्ञानमुतचेतो धृतिश्च

विशेषज्ञान, सामान्यज्ञान और धृतिज्ञान—ज्ञान, योग, उपासना और धर्म ये चारों साधन मनसे ही होते हैं।

मनसे ही सप्त होता यज्ञ चलता रहता है। खाना, पीना, देखना, छूना, सूंघना आदि यज्ञ चलता रहता है। मन ही यह यज्ञ करता है।

इसका तात्पर्य है कि इन्द्रियोंसे होनेवाले सब ज्ञानका माध्यम मन है। अब बतलाते हैं कि जो ज्ञान इन्द्रियोंके माध्यमसे नहीं होता, केवल शब्द द्वारा होता है, उसका माध्यम भी मन ही है।

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन्
प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिꣳश्चित्तꣳसर्वमोतं प्रजानां
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

जिस मनमें रथचक्रकी नाभिमें आरियोंके समान ऋग्वेद और सामवेद प्रतिष्ठित हैं तथा जिसमें यजुर्वेद प्रतिष्ठित है, जिसमें प्रजाका सब पदार्थोंसे सम्बन्ध रखनेवाला सम्पूर्ण ज्ञान ओत-प्रोत है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी सङ्कल्पसे युक्त हो।

'यस्मिन्नृचः······' ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेदका जितना ज्ञान है, सब मनमें है।

ऋग्वेदका महावाक्य है—'प्रज्ञानं ब्रह्म।'

सामवेदका महावाक्य है—'तत्त्वमसि।'

यजुर्वेदका महावाक्य है—'अहं ब्रह्मास्मि।'

अथर्वेदका महावाक्य है—'अयमात्मा ब्रह्म।'

ये चारो महावाक्य कहाँ रहते हैं? ये मनमें ही उत्पन्न होते हैं। ये ऋक्, साम, यजुः आदि वेद कहते हैं—'दशमस्त्वमसि।'

यद् ब्रह्म त्वया मृग्यते तत्त्वमसि

जिस ब्रह्मका तू अनुसन्धान कर रहा है, वह तू ही है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'रथनाभाः···' ये मनमें कैसे प्रतिष्ठित हैं, जैसे रथकी नाभिमें रथ-चक्रके अरे। भगवान्‌का चक्र भगवान्‌की अंगुलीमें ही तो प्रतिष्ठित है। रथके पहियोंकी तीलियाँ जैसे रथकी नाभिमें जड़ी हैं। ऐसे ही सम्पूर्ण विश्वकी नाभि मन है, इसीमें सब ज्ञान रहते हैं।

मनमें जो विपर्ययकी प्रतिष्ठा करते हैं, वे अज्ञान होते हैं और जो विपर्यय निवारक होते हैं, वे ज्ञान होते हैं।

सम्पूर्ण प्राणियोंका जो चित्त है—संस्कारात्मक ज्ञानराशि है, जितने भेदज्ञान हैं, वह सब मनमें रहता है। जैसे सुख या दुःखकी अज्ञात सत्ता नहीं होती, वैसे ही भेदकी भी अज्ञात सत्ता नहीं होती। जैसे सुख-दुःख परोक्ष नहीं होता, वैसे ही भेद भी कभी परोक्ष नहीं होता। भेद सदा ज्ञानके द्वारा ही प्रकाशित होता है।

इस प्रकार वैदिक और लौकिक सम्पूर्ण ज्ञान जिस मनमें रहता है, वह हमारा मन जो भी संकल्प करे, वह कल्याणके लिए, धर्मके लिए, परमात्माके लिए ही करे।

●

योगक्षेमं वहाम्यहम्

पण्डित अर्जुन मिश्र जी जगन्नाथपुरीके परिसरमें 'महाभारत'-पर टीका लिख रहे थे। श्रीमद्भगवद्गीताके नौवें अध्यायमें वहाम्यहम् शब्द उन्हें उचित नहीं लगा। अपनी कलम उठाकर लाल स्याहीसे उन्होंने उस शब्दको काटा और वहाम्यहम्‌के बदले ददाम्यहम् कर दिया।

पण्डित जी जब स्नानके लिए पधारे तो उस समयतक घरमें खानेके लिए कुछ नहीं था। इतनेमें एक बालक सिरपर रखी हुई टोकरीमें खानेकी अनेक चीजें भरकर पण्डितानीके पास आ गया। उसके शरीरपर मारकी लाल निशानी थी। पण्डितानीने जब पूछा तो, पण्डित जीने ही चोट पहुँचा दी है की शिकायत बालकने की।

जब पण्डित जी घर लौटे तब पण्डितानी उनपर बरस पड़ीं।

अन्तमें पण्डित जीको सुबहके उस श्लोकका स्मरण आया। गद्गद हो उठे। उन्होंने ददाम्यहम्‌का फिरसे वहाम्यहम् बना दिया।

—(म० श्री०) य० ब० क्षीरसागर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परमधर्म : योग

— अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज —

(गताङ्कसे आगे)

● योगांगोंपर एक दृष्टि :

निवृत्तिप्रधान धर्म है 'योग'। याज्ञवल्क्यने आत्म-दर्शनके साधन योगको 'परम धर्म' कहा है। योग पौरुष-साध्य है। जीवके द्वारा अनुष्ठित होता है। उसकी भी एक विधि है। वह त्वं-पदार्थ प्रधान है। द्रष्टाका अपने स्वरूपमें अवस्थान ही योग है। इसलिए निवृत्ति-प्रधान साध्य धर्मके अन्तर्गत योगका भी सन्निवेश है। योगके आठ अङ्ग हैं। अङ्गोंके क्रम-पर एक चलती-फिरती दृष्टि डाल लें। पहला यम--यमके पाँच विभाग हैं--सत्य-अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य। शत्रु चार हैं और निवर्तक पाँच हैं। कामका निवर्तक ब्रह्मचर्य है। सबके अन्तमें इसकी गणना इसलिए है कि पराधीन करनेवाली वृत्तियोंमें यह सबसे प्रमुख है और पहलेके चार गुणोंके सहकारसे ही इसपर विजय प्राप्त की जा सकती है। कामकी गति अत्यन्त सूक्ष्म है। वह बार-बार जीने-मरनेका स्वांग करता रहता है। आत्मासे अतिरिक्त देशान्तर, कालान्तर या वस्त्वन्तर रूपमें विद्यमान या वर्तमान किसी वस्तुको चाहना काम है। न चाहनेके रूपमें भी काम ही रहता है। इसीसे कामरूपको 'दुरासद' कहते हैं। उसको पकड़ पाना कठिन है। नित्यप्राप्त सत्ताके खो जानेकी भ्रान्ति और अन्यकी प्राप्तिकी इच्छा कामका मूल है। इसकी निवृत्तिके लिए अद्वय तत्त्वका, ब्रह्मका, आत्मरूपसे ज्ञान अपेक्षित है। उसी ब्रह्मकी प्राप्तिकी साधनाका नाम 'ब्रह्मचर्य' है। यह स्त्री-पुरुषकी परस्पर कामनासे लेकर भ्रम-प्रमा-मूलक वस्तुकी प्राप्तिकी इच्छा तक पहुँचता है। ब्रह्मके लिए चर्या ही इस इच्छाको मिटा सकती है।

○ यमों द्वारा व्यावृत्त्य :

स्तेय, लोभ एक दुर्गुण है। यह दो रूप धारण करके आता है। जिस

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वस्तुपर अपना स्वत्व नहीं है उसको किसी प्रकार प्राप्त करना, इसका नाम 'स्तेय' है। दूसरा रूप है—जो वस्तुएँ अपने पास हैं, जिनपर अपना स्वत्व है उन्हें अधिक-से-अधिक संग्रह करके अपने साथ रखें, परिग्रह करें, इसका नाम 'परिग्रह' है। लोभके इन दोनों तरुण-तनयोंको वशमें करनेके लिए अस्तेय और अपरिग्रह नामकी दो वृत्तियाँ आवश्यक होती हैं, पहले अन्याय-पूर्वक उपार्जनका परित्याग, फिर आवश्यकतासे अधिक संग्रहका परित्याग।

काम और लोभकी पूर्ति न होने पर मनुष्यके मनमें क्रोधका उदय होता है। इच्छापूर्तिमें बाधा डालने वालेके प्रति द्वेष भी होता है। द्वेष और क्रोध ज्वलनात्मक-वृत्तिके रूपमें प्रचण्ड हो उठते हैं और हिंसा तथा विद्रोहके रूपमें झण्डा उठाते हैं। यह क्रोध आग है और हिंसा उसकी ज्वाला। हिंसाके निरोधके लिए अहिंसाकी आवश्यकता होती है। अहिंसा आत्म-स्वरूपके अनुरूप अन्तःकरणका एक गुण है। यह स्वरूप-स्थितिके अधिक अनुकूल पड़ता है। यह करुणा तथा क्षमासे भी अन्तरङ्ग है; क्योंकि वे दोनों व्यवहार दशामें ही रहते हैं। अहिंसा शान्तिके रूपमें व्यवहारशून्य दशामें भी विद्यमान रहती है।

● यमोंका प्रयोजन :

हमारी वाणी, कर्म-कलाप, काम-संकल्प, विचार-विवेक, असत्यसे अनु-विद्ध हो गये हैं। हमारी बुद्धि अधि-कांश असत्यको ही सत्यके रूपमें ग्रहण करती है और व्यवहार करती है। व्यवहारमें माताके लिए सत्य अलग होता है, पत्नीके लिए अलग। यह सत्यकी विभाजक-रेखा समाधि लगाये विना टूट नहीं सकती और स्वरूप-सत्य-का साक्षात्कार होनेके लिए ऐसा आवश्यक है। ऐसी अवस्थामें यदि केवल वाणीसे ही सत्य-भाषण प्रारम्भ कर दिया जाये तो सत्य क्या है? यह जिज्ञासा जाग जायेगी। हम सत्यको जानेंगे तब सत्यको बोलेंगे। क्या बौद्धिक, मानस या ऐन्द्रियक सत्य ही सत्य है? आत्मसत्य सर्वथा गुप्त-लुप्त-सुप्त हो गया है? आत्मसत्य क्या है? इस जिज्ञासाका बीज सत्य-भाषणमें निहित है। आपकी दृष्टिसे जो असत्य है वह न बोलें, न करें, न सोचें। आपके जीवनमें एक दिन ऐसा आयेगा जब आप वास्तविक मौनका महत्त्व समझ जायेंगे। सत्यके साक्षात्कारके बिना बोलनेमें प्रवृत्ति ही नहीं होगी। सत्यकी अभिव्यक्ति मौनमें होती है।

कहना न होगा कि अष्टाङ्गयोगका यह प्रथम अङ्ग यम न केवल अपने लिए हितकारी है, प्रत्युत लोक व्यव-हारमें समाज-सेवाके लिए भी बहुत उपयोगी है। धर्म-कक्षामें साधारण धर्मका सार यही है। वेदान्तके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

साधन-चतुष्टयमें शम-दम आदि रूप षट्-सम्पत्ति भी इसीका परिपाक है। यह यम ही आदिमें धर्म है और अन्तमें अधिकार सम्पत्ति। यह जिज्ञासुके जीवनमें इतना घुल-मिल जाता है कि तत्त्वज्ञान होनेपर भी इसमें शिथिलता नहीं आती। जीवन्मुक्तिके विलक्षण सुखका आधार बनकर जीवन्मुक्त पुरुष-के जीवनमें उल्लसित होता रहता है। अन्तर्मुखताके साधनोंमें यही प्रथम है, इसके बिना किसी साधनकी नींव मजबूत नहीं होती।

● दूसरा अंग : नियम :

योगका दूसरा अङ्ग है **नियम**। यह व्यक्तिगत जीवनके निर्माणका आवश्यक साधन है। एक वस्तु जब दूसरी वस्तुके साथ मिश्रित हो जाती है तब दोनों ही अपने शुद्ध रूपमें नहीं रहते। मिट्टी और पानी मिलकर कीचड़ बन जाते हैं। शक्कर और जलका मिश्रण शर्बत हो जाता है। न शुद्ध जल रहा, न शुद्ध शक्कर। इसी प्रकार मनुष्यका चरित्र भी भिन्न-भिन्न वस्तुओं और व्यक्तियोंके समागमसे अपने शुद्ध रूप अर्थात् पवित्रताको खो बैठता है। आत्मा-अनात्माका मिश्रण भी अशुद्धि ही है। मनुष्यके चरित्रमें जब पवित्रताकी रुचि उदय होती है तब वह बहिरंग एवं अन्तरङ्ग दोनों ही प्रकारसे पवित्र रहनेका प्रयास करता है। शरीरपर मैल चढ़नेसे धोनेकी आवश्यकता होती है। इसी प्रकार मनमें शत्रु-मित्रके प्रवेशसे क्रोध-काम-रूप मलिनता आ जाती है और उसके निवारणके लिए द्वेषकी आग बुझानी पड़ती है और रागका रंग छुड़ाना पड़ता है। ऐसा कोई भी रंग नहीं है जो शरीरके बहिर्देश या अन्तर्देशमें प्रवेश कर जाय और उसको निकालना न पड़े, इसको **शौच** कहते हैं। यह अन्तरङ्ग और बहिरङ्गके मलको प्रक्षालित करनेकी प्रक्रिया है। स्नान, सन्ध्या-वन्दनगत अघमर्षणसे यह सम्पन्न होता है। शरीरमें जो भोगका अभ्यास हो गया है वह गहराईमें उतर गया है। भोगका अभ्यास एक रोग है, वह जितना-जितना बढ़ता है उतना-ही-उतना राग-संस्कार घनीभूत होता है, साथ ही भोगके कौशल बढ़ते हैं। भोगी पुरुष किसी-न-किसीको दुःख पहुँचा-कर ही भोग करता है। अतएव भोग-वृत्तिके संकोचका नियम लेना चहिए। अपनी रुचिके अनुसार कुछ न हो, न मिले, कोई न बोले तो थोड़ा कष्ट सह-कर भी अपनेको संयत रखना चाहिए। संयमहीन मनुष्य पशु हो जाता है। चाहे जिस खेतमें, चाहे जिसकी खेती-पर मुंह मार दिया। जो स्वधर्म-पालनके लिए कष्ट सहन नहीं करता वह धर्मात्मा नहीं, ढोंगी है। योग-सम्बन्धी नियममें जो **तप** है वही वेदान्तियोंकी षट् सम्पत्तिमें तितिक्षा बनकर प्रकट होती है। तपकी माँ है धृति, बेटी है तितिक्षा। जिसके जीवन-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में तप नहीं है वह किसी मन्त्रको रक्षा या ज्ञानके धारणमें समर्थ नहीं हो सकता।

शौच है—तन-मनमें बाहरसे लगे हुएको निकाल देना। तप है भीतर-ही-भीतर तन-मनको तपाकर कुन्दन बना देना। इसके बाद अपने लक्ष्यकी ओर अग्रसर होनेके लिये तत्सम्बन्धी-ज्ञान तथा तन्मयता प्राप्त करनेके लिए **स्वाध्याय**की आवश्यकता पड़ती है। धर्ममें स्वाध्यायका अर्थ होता है सांग-वेदोंका अध्ययन। कम-से-कम अपनी शाखाके वेदोंका अध्ययन उपासनामें स्वाध्यायका अर्थ होता है इष्ट देवताके दर्शनके लिए जप। जपसे प्रपंचकी विस्मृति और बारम्बार लक्ष्यका स्फुरण होता है। स्वाध्याय बार-बार प्रपंचका विस्मरण कराता है और लक्ष्यका स्फुरण। इससे अभ्यास एवं वैराग्यकी परिपुष्टि होती है। जपमें स्वरूपतः अभ्यास है, दुहराना है और लक्ष्यसे अतिरिक्त वृत्तिका उच्छेद है। स्वाध्यायसे लक्ष्यकी ओर अभिरुचि बढ़ती है।

साधकके लिए यह आवश्यक है कि अपने साधन-शरीरको परिपुष्ट रखनेके लिए किसी बाह्य वस्तुके लिए व्याकुल न हो। निर्वाह-मात्रके लिए ही खान-पान, परिधान, शयन-स्थान अपेक्षित हैं, सुख लेनेके लिए या ममता करनेके लिए नहीं। यदि बाह्य वस्तुओं-से ही अपनेको गौरवशाली महामहिम माना जाय तो अन्तरमें जो गरिमा सुषुप्त है वह जाग्रत् नहीं होती; क्योंकि उसकी ओर पीठ हो जाती है। आप असंग आत्मा होनेसे श्रेष्ठ हैं कि बहि-रङ्ग पद-प्रतिष्ठा, प्रशंसा, भोग-रागकी प्राप्तिसे? आपकी आत्मतुष्टि कहाँ है? **सन्तोष**के बिना साधना निष्प्राण हो जाती है। हां, वह सन्तोष लक्ष्य-प्राप्तिकी साधनासे नहीं, बाह्य-वस्तुओंकी लिप्सा से विरतिके रूपमें होना चाहिये।

यह जीव जबतक शिवसे एक नहीं हो जाता, जबतक पूर्णता एवं अपूर्णता—प्रतीति दृष्टि, उल्लास या कल्पना मात्र नहीं हो जाती, तबतक अपनी अल्पज्ञता और अल्पशक्तिताके बन्धनसे मुक्त नहीं हो पाता। जीव जीव ही है। साधनकी सभी कक्षाओंमें जीवत्व अनुगत रहता है। जीवत्वके साथ निर्बलता जुड़ी हुई है। वह कभी उदास होता है, कभी निराश होता है, कभी थोड़ी देर-केलिए उल्लास भी तरंगायित हो जाता है। जैसे शरीर स्वस्थ-अस्वस्थ होता रहता है, वैसे मन भी खिलता-मुरझाता रहता है। जैसे शरीरके लिए चिकित्सक और चिकित्साकी आवश्य-कता होती रहती है वैसे ही मनके लिए भी। मनके रोगोंकी चिकित्सा है—**ईश्वर-प्रणिधान**। ईश्वर शाश्वत है, सर्वज्ञ है, सर्वशक्ति है, करुणा-वरुणालय है, परम गुरु है। जैसे साँस-के साथ हवा रहती है, आँखके साथ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकाश-ज्योति रहती है, वैसे ही प्रत्येक मनमें जो सत्त्वांश है वह महासत्त्व शरीर परमेश्वरका ही रूप है। मन कण है तो ईश्वर मृत्तिका, मन विन्दु है तो ईश्वर सिन्धु, मन घट है तो ईश्वर घटाकाश। अतएव 'ईश्वरमें स्वतः समर्पणकी विद्यासे मनको देखना प्रणिधान है।' ईश्वर है प्रकृष्ट-निधान। सत्त्वात्मक मनका खजाना है, कोश है। स्थिति-मति-गति-रतिका कारण है—परमेश्वर। उसमें अपने मनको समर्पित करना, उसीके उद्देश्यसे अपने समस्त, क्रिया-कलापोंका अनुष्ठान, ईश्वरके प्रति आत्म-समर्पण 'प्रणिधान' अथवा शरणागतिभाव है। क्या हो रहा है, मिल रहा है, किया जा रहा है, वोला जा रहा है? इसकी ओर न देखकर सर्वत्र परम गुरु परमेश्वरका करुणामय, हितमय वरदहस्त कमल ही देखना चाहिए। उसकी उपस्थितिमें, उसकी आँखोंके सामने जो कुछ हो रहा है उसमें अनिष्टकी संभावना ही क्या है? इस सम्पूर्ण समर्पणसे साधक लौकिक चिन्ताओंसे मुक्त होकर तथा परमार्थकी प्राप्तिमें आशावान होकर विश्वासपूर्वक दृढ़तासे अपने साधनमें संलग्न हो जाता है। जहाँ भक्तिमार्गमें समर्पणको साधनकी पूर्णता मानते हैं वहाँ योगमार्गमें समर्पणको योग-साधनोंमें सहायक अङ्गीकार करते हैं।

यम-नियम साधन-मात्रकी प्रथम भूमिका है। साधन-मार्गपर चलनेके लिए ये अत्यन्त आवश्यक एवं अनिवार्य पाथेय हैं। ये मार्गमें मिलनेवाले प्रलोभनों एवं प्रतिवन्धोंसे रक्षा करते हैं। किसीको हानि पहुँचाये विना एवं स्वयं हानि उठाये विना आगे बढ़नेके लिए यही अन्तरंग एवं बहिरंग बल-सम्वल हैं। (क्रमशः)

अनिश्चित !

जीवनमें निश्चयका बड़ा महत्व है। एक याचक राजाके कोषागारमें गया, लेकिन कौन-सा रत्न उठा ले इसका घण्टाभरमें निश्चय न होनेसे उसे खाली हाथ लौटना पड़ा। एक मनुष्यने देवतासे वरदान प्राप्त किया कि उसके मनके पहले तीन संकल्प पूरे हो जायेंगे। जंगलकी शीतल छाया देखकर वहाँ रहनेका पहला संकल्प उठा। जमीनपर सुखद शयन-संकल्पसे पत्नी वहाँ बुलायी गयी और दूसरा वरदान पूरा हुआ। तीसरे संकल्पसे महाशयजी अपने घर पहुँचे। बारह सालकी की हुई तपस्या आखिर पानीमें गयी।

—(म० श्री) य० ब० क्षीरसागर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कर्तृत्वाभिमान : एक चिन्तन

विरक्तशिरोमणि परमहंस विद्वान्

—सन्त स्वामी श्री वामदेवजी महाराज—

शरीरेन्द्रियमन निमित्तक कर्तृत्व-धर्म आत्माका माना जाय तो कर्तृत्वाभिमानकी निवृत्ति सम्भव नहीं है; क्योंकि आत्माको कर्ता स्वीकार करनेपर 'मैं कर्ता हूँ'—ऐसा कर्तृत्वाभिमान अवश्य बना रहेगा। कर्तृत्वाभिमानके बने रहनेपर कर्मका फल भोगनेके लिए शरीरादि सम्बन्ध-परम्परा बने रहनेसे कभी मोक्ष नहीं होगा। शास्त्रोंमें कहा है कि शरीरके विद्यमान होनेपर प्रिय तथा अप्रियका सम्बन्धरूप बन्धन रहेगा। प्रियाप्रिय सम्बन्धका अभावरूप मोक्षका वर्णन होनेसे आत्माका ऐसा ही स्वरूप मानना आवश्यक है जिसके ज्ञान होनेपर कर्तृत्व-अभिमान न रहे। वह तभी सम्भव है जब कि आत्मा स्वरूपसे अकर्ता हो। अतः उपनिषदोंमें आत्माको **नायं हन्ति न निबध्यते** इत्यादि वाक्योंसे 'अकर्ता' कहा है। आत्मामें स्वरूपतः कर्तृत्वाभावका बोध हो जानेपर न तो कर्तृत्वाभिमान सम्भव है और न कर्मफल जन्मादि ही सम्भव है। इसी अभिप्रायसे भगवान्‌ने गीतामें कहा है कि **यस्य नाहंकृतोभावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते। हत्वापि स इमान् लोकान् न हन्ति न निबध्यते।** जिस आत्मदर्शी विद्वान्‌को 'मैं कर्ता हूँ'—ऐसा कर्तृत्वाभिमान नहीं होता तथा जिसकी बुद्धि लिप्त नहीं होती है अर्थात् 'यह मैंने किया है, उसका अमुक फल मैं भोगूँगा'—ऐसा अनुसन्धान नहीं करती है, वह तीनों लोकोंका, अज्ञ पुरुषोंकी दृष्टिमें हनन करता होता हुआ भी वस्तुतः न वह हनन करता होता है, न कर्मफल-बन्धनको ही प्राप्त होता है। अतएव भगवत्पाद शंकराचार्यजीने आत्माको असंग, अविक्रिय तथा अकर्ता सिद्ध किया है। आत्माके अकर्ता होनेपर भी 'मैं कर्ता हूँ'—इस प्रतीतिसे सिद्ध कर्तृत्वका आश्रय 'अहम्' तत्त्व है। 'अहम्' तत्त्व बुद्धि तत्त्व है अतएव 'सर्ववेदान्त सिद्धान्त-सार संग्रह' ग्रन्थमें भगवत्पादने कहा है कि :

करोति विज्ञानमयोऽभिमानं
कर्ताऽहमेवेति तदात्मनास्थितः।
आत्मा तु साक्षी न करोति किञ्चि-
न्न कारयत्येव तटस्थवत्सदा॥

विज्ञानमय ही मैं कर्ता हूँ—ऐसा अभिमान

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करता है। अतः विज्ञानमय ही कर्ता-रूपसे स्थित है। आत्मा तो तटस्थके समान स्थित है अतः वह न कर्ता है, न कारयिता ही है।

कुछ विचारकोंका कथन है कि ब्रह्मसूत्रके शांकर भाष्यसे, बुद्धिका धर्म 'कर्तृत्व' सिद्ध नहीं होता है; क्योंकि अ० १ पा० २ सूत्र १२ के भाष्यमें शंकराचार्यजीका यह कथन है—**परमार्थस्तु नान्यतरस्यापि सम्भवति अचेतनत्वात् सत्त्वस्य अक्रियत्वाच्च क्षेत्रज्ञस्य।** परमार्थतः तो आत्मा तथा बुद्धिसत्त्व इन दोनोंमें-से किसीमें भी कर्तृत्व सम्भव नहीं है; क्योंकि आत्माको अविक्रिय होनेसे उसमें कर्तृत्व और भोक्तृत्व विकार सम्भव नहीं है। बुद्धि-सत्त्वको विकारी होनेपर भी घटादिके समान जड़ होनेसे उसमें कर्तृत्व सम्भव नहीं। आचार्यके इस कथनसे बुद्धिसत्त्वमें भी 'कर्तृत्व' सिद्ध नहीं होता है।

किन्तु पूर्वोक्त प्रकारसे जिन विचारकोंने भाष्यके वाक्यसे बुद्धिमें कर्तृत्वाभाव सिद्ध करनेका प्रयास किया है, वह उचित नहीं है; क्योंकि भाष्यकार जो ऐसा कहते हैं कि अविक्रिय तथा जड़ होनेसे दोनोंमें कर्तृत्व सम्भव नहीं है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि दोनोंमें-से किसीका धर्म नहीं अपितु भाष्यकारका अभिप्राय यह है कि परमार्थतः अर्थात् पृथक्-पृथक् दोनोंके स्वरूपपर विचार करनेसे दोनोंमें कर्तृत्व-भोक्तृत्व सम्भव नहीं है तथापि **'इदं कर्तृत्वं भोक्तृत्वं च सत्त्वक्षेत्रज्ञयोरितरेतरस्वभावाविवेककृतं कल्प्यते'**। यह कर्तृत्व-भोक्तृत्व धर्म बुद्धिसत्त्व तथा साक्षी आत्माके अविवेक (तादात्म्याध्यास) कृत अनुभव किये जाते हैं। दोनोंको तादात्म्य दशामें भी उपस्थित कर्तृत्व-भोक्तृत्व किसका धर्म है? इस आकांक्षाकी पूर्तिके लिए भाष्यकार इसी प्रसंगमें कहते हैं कि **सुखादिविक्रियावति सत्त्वे भोक्तृत्वमध्यारोपयति** अर्थात् सुखादि विकारवाले बुद्धिसत्त्वमें ही भोक्तृत्वको श्रुति प्रक्षिप्त करती है। अभिप्राय यह है कि पृथक्-पृथक् क्षेत्रज्ञ तथा बुद्धि सत्त्वमें-से किसीमें भोक्तृत्वादि सम्भव न होनेपर भी उन दोनोंके तादात्म्य कालमें प्रतीत होनेवाला यह भोक्तृत्वादि, अविक्रिय आत्माका धर्म न होनेपर भी सुखादि विकारवाले बुद्धिका धर्म है। जैसे अयोगोल तथा अग्निमें पृथक्-पृथक् स्वरूपपर विचार करनेपर दाहकत्व सिद्ध न होता हुआ भी अग्निसे तादात्म्यापन्न अयोगोलमें 'अयो दहति' इस प्रतीतिसे सिद्ध होता है। सो वह दाहकत्व अग्निका ही धर्म माना जाता है, क्योंकि दाहकत्वकी योग्यता अग्निमें है। उसी प्रकार भोक्तृत्वादि विकारकी योग्यता अविक्रिय आत्मामें तो सम्भव नहीं है। किन्तु सुखादि विकारवाले बुद्धिसत्त्वमें ही योग्यता होनेसे सम्भव

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। अतः भोक्तृत्व-कर्तृत्वादि धर्म बुद्धिसत्त्वके हैं। इस प्रकार भाष्यके पूर्वापरका विचार करनेसे यह सिद्ध नहीं होता कि कर्तृत्वादि धर्म बुद्धि-सत्त्वके नहीं हैं। ऐसी दशामें यह असम्भावना भी कुछ महत्त्व नहीं रखती है कि 'यदि कर्तृत्वादि प्रतीत होते हैं तो आत्मा तथा बुद्धिके ताद-त्म्यापन्न होनेपर ही प्रतीत होते हैं। अतः उसे केवल अन्तःकरणका धर्म नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि अयोगोलसे तादात्म्यापन्न अग्निमें दाहकत्व रहने-पर भी वह वह्निका ही धर्म माना जाता है एवं योग्यता होनेसे परस्पर तादात्म्य दशामें प्रतीत कर्तृत्व-भोक्तृ-त्वादि धर्म बुद्धिसत्त्वके ही कहे जा सकते हैं। तथा यह आपत्ति तो मनको करण माननेपर भी आ सकती है कि आत्मासे संयुक्त मनमें ही करणत्व प्रतीत होनेपर वह केवल मनका धर्म कैसे कहा जा सकता है, इत्यादि कहनेका भाव यह है कि असंग तथा अविक्रिय आत्मतत्त्व कर्त्ता, भोक्ता नहीं है। जो उसमें कर्ता-भोक्तापन प्रतीत होता है कर्तृत्व-भोक्तृत्व, सुखःदुखादि धर्मोंसे युक्त बुद्ध्यादि उपाधि निमित्तक है। अतएव ब्रह्मसूत्र अ० २ पा० ३ सू० २-६ के भाष्यमें भगवत्पादने कहा है कि **न हि बुद्धेर्गुणैर्विना केवलस्या-त्मनः संसारित्वमस्ति। बुद्ध्यादि-धर्माध्यासनिमित्तं हि कर्तृत्व-भोक्तृत्वादिलक्षणं संसारित्वमकर्तुरभोक्तुश्चासंसारिणोनित्यमुक्तस्य सत आत्मनः।** अर्थात् बुद्धिके गुणोंके बिना केवल आत्मामें संसारित्व नहीं है। बुद्धिरूप उपाधिके धर्मोंके अध्यास निमित्तक ही अकर्ता, अभोक्ता, नित्यमुक्त, असंसारी आत्मामें संसारित्व है।

यद्यपि ब्रह्मसूत्र अ० २ पा० ३ सूत्र ३३ से लेकर ३९ तक जीवात्माको कर्त्ता तथा बुद्धिको करणरूपसे प्रति-पादन किया है जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होने लगता है कि भाष्यकारको बुद्धि करणरूपसे अभिमत है किन्तु इन पूर्वोक्त ३३ से लेकर ३९ तकके सात सूत्रोंमें आत्माको भोक्ता, बुद्धिको कर्त्ता माननेवाले सांख्यका खण्डन किया गया है। जो आत्माको कर्त्ता-भोक्ता तथा बुद्धिको करण मानते हैं वे पूर्वपक्षीकी ही कोटिमें हैं। अतः ब्रह्म-सूत्र २.३.४० के भाष्यमें सिद्धान्त पक्ष-का प्रदर्शन करते हुए भाष्यकारने कहा है कि **स बुद्धेरेव कर्त्तृत्वं प्रापयति, विज्ञानशब्दस्य तत्र प्रसिद्धत्वात्। विज्ञानं यज्ञ तनुते** यह श्रुतिवाक्य बुद्धिमें ही कर्तृत्वको प्राप्त करता है क्योंकि बुद्धिमें ही विज्ञान शब्द प्रसिद्ध है।

चालीसवें सूत्रमें ही यह आशंका होनेपर कि 'जहाँ-तहाँ बुद्धिको करण क्यों कहा है' भाष्यकारने कहा है कि 'उपलब्धिकी अपेक्षासे बुद्ध्यादिका करणत्व है'। इस प्रकारके भाष्य-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वचनको देखकर ऐसा प्रतीत होने लगता है कि भाष्यकार कभी बुद्धिको करण तथा कभी कर्त्ता कहकर इस विषयको संदिग्ध बना देते हैं। परन्तु सम्प्रदायानुसार भाष्यका स्वाध्याय करनेपर कोई सन्देह नहीं होता; क्योंकि भाष्यकार कृति आश्रयत्वरूप कर्तृत्व बुद्धिमें मानते हैं और जो ऐसा कहते हैं कि **उपलब्ध्यपेक्षं त्वेषां करणानां करणत्वम्** यह उपलब्धिके प्रति करणत्व कहा गया है। उपलब्धिके प्रति कर्तृत्व क्यों नहीं तथा करणत्व क्यों है? इसपर भाष्यकार लिखते हैं **सा चात्मनः** वह उपलब्धि जिसके प्रति बुद्ध्यादिकोंको करण कहा गया है, आत्माकी है। यह आशंका होनेपर कि वह उपलब्धि आत्माकी है अर्थात् आत्माका व्यापार है तो उपलब्धिके प्रति आत्मामें ही स्वाभाविक कर्तृत्व सिद्ध हो ही जायगा। उत्तर देते हैं कि—**नित्योपलब्धिरूपत्वात्** आत्माकी नित्य उपलब्धि-रूपता होनेसे वह उपलब्धिके प्रति कर्ता नहीं है। जन्य तथा अपनेसे अन्य पदार्थके प्रति ही कोई कर्ता होता है, उपलब्धि नित्य तथा आत्माका स्वरूप है, अतः उसके प्रति आत्मा कर्ता नहीं है।

यद्यपि जन्य पदार्थके प्रति ही कोई पदार्थ करण होता है, बुद्धि नित्योपलब्धिके प्रति करण भी कैसे सम्भव हो सकती है? तथापि विषयावच्छिन्नात्मोपलब्धि, बुद्धिकी विषयाकारवृत्तिसे अवच्छिन्न होकर अनावृत होती है तब वह विषयका प्रकाश करती है। भाव यह है—अनावृत चेतन ही विषयका प्रकाशक है। उसके नित्य होनेपर भी उसकी अभिव्यक्ति बुद्धिवृत्तिसे होती है। उस अभिव्यक्तिसे युक्त चेतनका करण बुद्धि है। अतः अभिव्यक्तिसे युक्त (अनावृत) चेतनरूप उपलब्धिका करण भी बुद्धि कहलाती है। अतएव टीकाकार वाचस्पति मिश्रजीने लिखा है कि :

नाऽपि बुद्ध्यादेरुपलब्धिकर्तृत्वमात्मन्यन्यध्यस्तं यथा तद्गतमध्यवसायादिकर्तृत्वम्।

उपलब्धिके प्रति करणभूत बुद्धिका आश्रय होनेसे आत्मा उपलब्धिका कर्ता कहा जाता है; क्योंकि करणका आश्रयकर्ता कहलाता है, न कि करणके व्यापारके अनुकूल कृतिका आश्रय होनेसे। अतः भाष्यकार जहाँ बुद्धिका धर्म कर्तृत्व कहते हैं वहाँ उसके व्यापारभूत कामसंकल्पाध्यवसायादिके प्रति कर्ता होनेसे कहते हैं। जहाँ 'करणत्व' कहते हैं वहाँ उपलब्धिके प्रति करण होनेसे कहते हैं। अतः भाष्यवचनमें किञ्चित् भी विरोध नहीं है।

यदि कहा जाय कि बुद्धिको प्रेरित करनेके लिए आत्मामें भी कृतिरूप व्यापार स्वीकार करना होगा; क्योंकि कोई कर्ता करणको व्यापारवाला करनेके लिए स्वयं भी व्यापारवाला देखा जाता है। जैसे देवदत्त दण्डादि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करणको व्यापारवाला करनेके लिए स्वयं भी व्यापारवाला होता है, ऐसी स्थितिमें आत्माको कृतिका आश्रयरूप कर्ता स्वीकार किये विना कथमपि निर्वाह न होगा। यह कहना भी इस-लिए उचित नहीं है कि आत्मा स्वनिष्ठ व्यापारके विना अयस्कान्तमणिके समान सन्निधिमात्रसे ही बुद्धिको व्यापारयुक्त कर देता है। इस कथन-पर यदि यह आपत्ति उठायी जाय फिर तो स्वभाव-विशेषके कारण जैसे जड़ अयस्कान्तमणि लोहखण्डका प्रेरक है वैसे ही स्वभावविशेषसे जड़ आत्मा भी बुद्ध्यादिका प्रेरक सम्भव हो जानेसे आत्माको चेतन माननेकी क्या आवश्यकता है ? इसका समाधान यही है कि **घटमहं न जानामि** इस अनुभवकी अनुपपत्तिसे ही आत्मा-को स्वयंप्रकाश चेतनस्वरूप ही स्वी-कार करना आवश्यक है। इस अनु-भवमें अहंतत्त्व (बुद्धि), घट एवं घटका ज्ञान—ये तीनों विषय हो रहे हैं। इन तीनोंको प्रकाशित करनेवाला अनुभवस्वरूप आत्मा जड़ सम्भव नहीं है अथवा जिस स्वभावविशेषसे आत्मा-की सन्निधि मात्रसे हो प्रेरक स्वीकार करते हो, आत्माका जड़ अनात्म-पदार्थोंकी अपेक्षा यह स्वभाव-विशेष चेतनत्वके अतिरिक्त और कुछ सम्भव न होनेसे स्वभावविशेषकी शरण लेनेपर आत्माको जड़ कहना सम्भव नहीं है।

पुनः उपनिषदादिपर किये शांकर-भाष्यमें आत्मामें कर्तृत्व सिद्ध करनेका प्रयास करनेवालोंका एक यह भी कथन है कि **नहि वक्तुर्वक्तेर्विपरि-लोपो विद्यते, अविनाशित्वात्** अर्थात् वक्ताकी वाणीका कभी लोप नहीं होता है; क्योंकि वह अविनाशी है। इस बृहदारण्यक वचनसे वक्ताकी वचन-क्रिया नित्य सिद्ध होती है। बृहदारण्यक भाष्य करते हुए श्रीभगवत्पादने इस वाक्यका स्पष्ट अर्थ भी नहीं किया है। अतः नित्य वचन-क्रियाका आश्रय आत्मा नित्य कर्त्ता है ऐसा सिद्ध होता है। किन्तु पूर्वोक्त आत्मामें नित्य क्रिया मानना युक्तिसे तो विरुद्ध है ही भाष्यकारके किये अर्थसे भी विरुद्ध है। भाष्यपर विवेचन चल रहा है अतः विरोधमें युक्तियाँ न प्रदर्शितकर उपर्युक्त अर्थके विरोधमें भाष्यका ही प्रदर्शन करते हैं। इस वक्ताकी वक्तिको नित्य बतलानेवाले वाक्यका बृहदारण्यक भाष्यके समय कोई अर्थ न करते हुए भी केनोपनिषद्के प्रथम खण्डके चतुर्थवाक्यके भाष्यमें इसपर विचार किया है। भाष्यकार कहते हैं कि :

सा वाग् यया स्वप्ने भाषते, सा हि वक्तुर्वक्तिर्नित्यावाक् चैतन्यज्योतिः स्वरूपा। न हि वक्तुर्वक्तेर्विपरि-लोपो विद्यते इति श्रुतेः॥

अर्थात् स्वप्नमें यह जीव जिससे भाषण करता है, वह वक्ताकी नित्य वाणी है,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जो कि वाणीकी वाणी कही जाती है वह नित्य चैतन्य ज्योतिःस्वरूपा है। यह ज्योतिः स्वरूपा वाणी **न हि वक्तुर्वक्तेर्विपरिलोपो विद्यते** इस श्रुतिसे प्रसिद्ध है। उपर्युक्त भाष्यवचनसे श्रुतिमें कही नित्यवाणीको 'नित्यज्ञानस्वरूप ही वताया है न कि नित्यक्रिया। अतः भाष्यकारके अर्थके अनुसार नित्यवचन क्रिया अर्थं सिद्ध न होनेसे नित्य क्रियाका आश्रय अथवा स्वरूप आत्मा सिद्ध नहीं होता है।

पुनः **कल्पयत्यात्मनात्मानमात्मादेवः स्वमायया** इस कारिकाके बलपर उनका यह भी कहना है कि कारिकामें माया शब्दका तृतीयान्त होनेसे माया कल्पनामें निमित्त है, कल्पनाका कर्ता आत्माको ही कहा है। अतः कल्पना-कर्तृत्व आत्मामें अवश्य स्वीकार करना होगा ही। इसपर हमारा यह कथन है कि तृतीया केवल निमित्तार्थक ही तो नहीं होती क्योंकि शब्दशक्तिके ज्ञाता पुरुष तृतीयासे कर्तृत्व, करणत्व, ज्ञानज्ञाप्यत्व, अभेद, साहित्य, (वैशिष्ट्य) प्रतियोगित्व, निरूपितत्वादिक अनेक अर्थ मानते हैं। यहाँ तृतीयाका वैशिष्ट्यार्थ होनेसे कारिकाका अर्थ यह है कि माया (अविद्या) से विशिष्ट आत्मदेव स्वयं अपने आपको विश्वरूपमें कल्पना कर लेता है।

प्रश्न : मायाविशिष्ट भी कल्पनाका कर्ता रहे फिर भी आत्मामें कल्पनाका कर्तृत्व स्वीकार तो करना ही होगा।

उत्तर : कल्पना शब्दका अर्थ यहाँ मिथ्या ज्ञान है। कर्तार्थक प्रत्ययका अर्थ आश्रय है क्योंकि जानाति, इच्छति, करोतिके क्रमानुरोधसे ज्ञानके पश्चाद् भावी कृति ज्ञानके अनुकूल न होनेके कारण मिथ्याज्ञानानुकूल कृति आश्रयत्वरूप कल्पकत्व आत्मामें नहीं है किन्तु मिथ्याज्ञानाश्रयत्वरूप कल्पकत्व आत्मामें है, वह भी मायाविशिष्टमें ही है, न कि शुद्ध आत्मामें। विशिष्ट आत्मामें भी वृद्ध कल्पना आत्माको निर्विकार होनेसे मायाका ही परिणाम है। विशेषणभूत मायाका परिणाम मायामें स्थित विशिष्टमें भी प्रतीत होता है। अतः आत्मामें तो मायोपाधिक कल्पकत्व मिथ्या ही है।

यदि कहा जाय कि माया भी कल्पित है मायाकी कल्पनाका कर्ता होनेसे, आत्माको कर्ता मानना ही होगा। किन्तु यह भी कहना इसलिए उचित नहीं है कि पूर्वोक्त कारिका भाष्यमें यह कहा गया है—"यह माया-विशिष्ट चेतन कर्तृत्वादि धर्मविशिष्ट जीवकी कल्पना करता है—कि 'मैं कर्ता हूँ, सुखी हूँ' इत्यादि। तत्पश्चात् बाह्य अनेक प्रकारकी कल्पना करता है। इसी प्रकार अहं अज्ञः ऐसी भी कल्पना अज्ञानविशिष्ट ही करता है। इस कल्पनाका

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विषय होनेसे अज्ञान (माया) कल्पित है। तथा इसी अज्ञान-कल्पना-का आश्रय अज्ञानविशिष्ट चेतन कल्पक है। उस अज्ञानकी कल्पकता भी चेतनमें मायोपाधिक होनेसे मिथ्या है। अतएव वेदान्ताचार्योंने स्वकल्पनामें अज्ञानको स्वयं ही हेतु स्वीकार किया है।

यदि कहा जाय कि कल्पित पदार्थं कल्पना समकाल ही होता है; सुषुप्तिमें **अहं अज्ञः** ऐसी कल्पना न रहनेसे अज्ञानकी स्थिति ही नहीं रहेगी। इस आशंकाका आचार्योंने यही उत्तर दिया है कि यह दृष्टि-सृष्टिवाद हमको स्वरूपसे अनादि पदार्थोंमें स्वीकृत नहीं है, क्योंकि 'दृष्टि-सृष्टि' शब्दका अर्थ होता है कि दृष्टि अर्थात् अपरोक्ष प्रतीतिके समसमय सृष्टि अर्थात् उत्पत्ति। यह दृष्टि-सृष्टिवाद स्वरूपतः अनादि पदार्थोंमें उत्पत्ति न होनेसे सम्भव नहीं है। अतः अज्ञान एतादृश कल्पनासे पूर्व भी सिद्ध ही है तथा सुषुप्तिमें उसका अस्तित्व स्वीकार करना आवश्यक है।

पुनः ऐसी आपत्ति उठायी जाती है कि समस्त कल्पनाओं तथा कल्पित पदार्थोंका उपादान कारण शांकर मतमें अविद्याको माना जाता है किन्तु अविद्याको साक्षात् उपादान कहने-वाला कोई उपनिषद्-वाक्य न मिलनेसे उक्त समस्त कल्पनाओंकी पुष्टि सम्भव नहीं है। इसपर यही कहना उचित है कि **मायां तु प्रकृतिं विद्यात्** यह श्रुति संसारकी प्रकृति अर्थात् उपादान कारण माया है—ऐसा कहती है। यहाँ 'माया' शब्द अज्ञान-के लिए ही प्रयुक्त हुआ है; क्योंकि उपर्युक्त वाक्यसे आगे **तत्त्वभावात् विश्वमायानिवृत्तिः** तत्त्वज्ञानसे मायाकी निवृत्ति कही गयी है। तत्त्वज्ञानका अज्ञानसे विरोध होनेसे यहाँ तत्त्वज्ञानसे निवृत्त होनेवाली माया अविद्या ही है। इसके अतिरिक्त **माया च तमोरूपानुभूतिस्तदेतज्जडं मोहात्मकमनन्तमिदं रूपमस्य व्यञ्जिका, नित्यनिवृत्तापि मूढै-रात्मवदेव दृष्टा सैषा वटबीज-सामान्यवदनेकवटशक्तिरेकैव। माया चाविद्या च स्वयमेव भवति।**—इस नृसिंहोत्तरतापिनी श्रुतिमें मायाको नित्यनिवृत्ता, मूढ़ पुरुषोंको आत्माकी तरह सत्य दिखायी देने-वाली वटबीजकी तरह कारण तथा अविद्यारूप बतलाया है। नादबिन्दू-पनिषद्में भी कहा है कि **उपादानं प्रपञ्चस्य मृद्भाण्डस्येव पश्यति। अज्ञानं चेति वेदान्तैस्तस्मिन्नष्टेव विश्वता।** अज्ञानको प्रपञ्चका, घटादि पात्रोंका मिट्टीके समान उपादान कारण जान लेनेपर, वेदान्तजन्य ज्ञानसे उस उपादानभूत अज्ञानके नष्ट होनेपर फिर आत्मामें विश्व-भाव कहाँ रहेगा अर्थात् नहीं रहेगा। इस वाक्यसे स्पष्ट ही

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सन्तमत : एक दृष्टि

आचार्य श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी

सन्त :

अपभ्रंश कालसे ही 'शतृ' एवं 'मतुप्' प्रत्ययान्त संस्कृत शब्द 'अन्त' शब्दान्त हो गये, जैसे हसन्त, सन्त, भगवन्त, हनुमन्त। वहीं हिन्दी भाषाने भी इन्हें उत्तराधिकारके रूपमें प्राप्त किया। 'सन्त' शब्द भी एक ऐसा ही शब्द है। यह 'सत्' शब्दका ही अपभ्रंश रूप है। अर्थमें तो कुछ परिवर्तन हो गया। यह सामान्यतः शील, विनय-सम्पन्न साधु पुरुषके लिए और विशेषतः भगवान्‌के प्रति अर्पित-आत्मा भक्त जनोंके लिए प्रयुक्त होता है। वर्तमान कालमें यही 'सन्त' शब्द अर्थ-संकोच प्राप्त करके निर्गुण भक्तिमार्गियोंके लिए, जिनमें नामदेव, कबीर, रविदास, नानक, दादू, आदि-का समावेश है, जो भगवद्भजनका ही जीवनकी परम तथा चरम चरितार्थता मानते हैं, प्रयुक्त होने लगा है। इन भक्तोंका कहना है कि स्वसंवेद्य ज्ञान ही परम प्रमाण है। श्रुति, स्मृति, पुराणमें प्रसिद्ध आप्तवचन प्रमाण नहीं हैं। ये भक्त तीर्थस्नान, व्रत, अनुष्ठान, यज्ञ-यागादि कर्मप्रपञ्चपर श्रद्धा नहीं करते। ये भक्त सत्य, तपस्या, ब्रह्मचर्य, शम-दम, तितिक्षा, सरलता आदि सनातन

(पृष्ठ १७० का शेष)

अज्ञानको विश्वका उपादान कारण कहा है।

पूर्वोक्त प्रकारसे श्रुतियों द्वारा विश्व-कल्पनाका उपादान कारण अज्ञानको सिद्ध हो जानेसे समस्त विश्वका कल्पकत्व आत्मामें मायिक सिद्ध हो जानेपर एवं भाष्य-वचनोंसे कर्तृत्वादि धर्म बुद्धिसत्वके निश्चित हो जानेपर, आत्मा नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-निर्लेप-निरंजन, सर्वधर्मातीत है—ऐसा जान लेनेपर शरीरादिके बन्धनकी समाप्ति हो जानेसे अपने स्वरूपमें स्थित होकर यह अधिकारो पुरुष **न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते** का भागी हो जाता है अन्यथा नहीं। अतः आत्मा कर्तृत्वभोक्तृत्वादि सर्वधर्मातीत है, यही निर्णय श्रौत एवं युक्तिसंगत है।

●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

धर्मोंका विशेष आदर करते हैं। ये भक्त भगवद्भजनके विघ्न भोगप्रवृत्तिके विस्तारक वस्तुओं एवं क्रियाओंका तिरस्कार करते हैं जैसे मद्य-मांसका सेवन, सिद्धि-चमत्कारादिका प्रदर्शन जो कि मिथ्याचारके अन्तर्गत हैं—असंयत विलासमय आचरण।

सन्त-वाणीकी महिमा :

इन सन्त भक्तोंने यद्यपि अपनी वाणी लोकभाषामें कही है और उनमें काव्य-अलंकारकी दृष्टि नहीं है तथापि सहृदय सज्जनोंने उनसे बहुत प्रेम किया है; क्योंकि उनमें सहज मानव-धर्मके प्रतिपादनका सामर्थ्य है, निसर्ग सौन्दर्यके अभिव्यञ्जनाका पाटव है, भगवत्प्रेमके प्रकाशनकी योग्यता है। निश्चय ही इनकी वाणी दर्शन पदवी-पर आरूढ़ होने योग्य नहीं है, क्योंकि न इनमें क्रमवद्ध तर्क-युक्ति है और न तो पूर्वपक्ष-उत्तरपक्ष आदिके द्वारा निर्णयकी परम्परा है। निश्चय ही इनका एकमात्र लक्ष्य है भगवद्भजन। ये राग-द्वेषके कलंक-पंकसे विनिर्मुक्त हैं, सहजभावसे मानवधर्मको प्रकाशित करते हैं, शील-सदाचार-विनयकी ओर इनका रुझान है, निर्भयतासे भरपूर हैं। अतएव जीवनकी समग्र दृष्टिको अभिव्यक्ति देनेमें समर्थ हैं। इन निर्मल-हृदय महापुरुषोंके हृदयके सहज समुच्छ्वास-वचनोंकी महिमा भलीभाँति समझनेके लिए तत्कालीन सामाजिक परिस्थितिपर एक दृष्टि डालना आवश्यक है। अतः संक्षेपमें उसे यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

सन्त-परम्परा :

इन निर्गुण मतवादी सन्तोंका अत्यन्त स्पष्ट प्रभाव विक्रमकी चौदहवीं शताब्दीके बाद ही देखा जाता है। उन दिनों लोक-मनपर निर्गुण-ब्रह्म-वादी नाथ-मतानुयायियोंका प्रभाव बढ़ रहा था। ये सन्त उनसे पृथक् साध्य एवं साधनकी स्थापना करते थे। सन्त-महात्मा भक्तिपथपर जितनी श्रद्धा करते थे उतनी श्रद्धा नाथ-पन्थियोंमें नहीं थी। यद्यपि दोनों निर्गुणको ही अपना-अपना उपास्य स्वीकार करते थे तथापि ज्ञानोन्मुख योगियोंकी अपेक्षा इन सन्तोंकी भक्ति-भावना विशेष थी।

कालका सिंहावलोकन :

इससे भी पहले भारतवर्षमें इस्लाम मजहबका प्रवेश एक अभूतपूर्व सांस्कृतिक द्वन्द्वकी सृष्टि कर चुका था। निश्चय ही उसके भी पूर्व शक-हूण आदि जातियाँ देशान्तरसे इस देशमें प्रवेश कर चुकी थीं। उन्होंने कुछ समयके लिए जनसमाजमें क्षोभ भी उत्पन्न कर दिया था। परन्तु क्रमशः अपने गुण-कर्मानुरूप वर्ण-व्यवस्थामें ही विलीन हो गयीं। अपनेमें कुछ-कुछ विशेषता रखनेपर भी ये महाविशाल जातिके गोदमें समा गयीं। इस्लाम मतानुयायियोंने उनके समान अपनेको विलीन नहीं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किया। उनके सुसंगठित, स्वाधीन, सुदृढ़, मजहबके अनुयायियोंने न केवल वर्ण-व्यवस्थाका अपमान किया, प्रत्युत उसपर आक्रमण भी किया। भारतीयोंके लिए इस प्रकारका आक्रमण अपूर्व एवं अज्ञात था। विविध जातियाँ आकर अपनी विशेषताका किंचित् संरक्षण करते हुए सनातनधर्मसे मिल जाती थीं। परन्तु इस्लाममें दूसरे मतानुयायियों-को निगल जानेका उत्साह अश्रुत पूर्व था। ये देवमन्दिर और देव-प्रतिमाओंका विध्वंस या तोड़-फोड़ करनेमें हिचकते नहीं थे, उत्साह और उल्लासके साथ वैसे कार्यको सवाव समझते थे। उन दिनों भारतीय समाज अनेक जातियोंमें बँटा हुआ था। विद्वान् नवीन-चिन्तनसे विमुख हो गये थे। राजशक्ति शिथिल हो गयो थी। पण्डितगण केवल टीका लिखकर सन्तुष्ट हो रहे थे। भारतीयों-का तेज शान्त हो रहा था। उनमें एक सिकुड़नेवाली कुण्ठा, शील—अवगुंठित प्रवृत्तिका उदय हो गया था। स्वाभि-मान शून्य जन-समाजमें इन सन्तोंने एक नवीन आशाका संचार किया। इन सन्त भक्तोंने सार-सार ग्रहण कर लिया और भगवद्भक्तिके विघ्न—मिथ्याचारोंका खुलकर विरोध किया। सहज मानवधर्मकी महिमाका समुद्घोष किया। इन्होंने इस्लामके समानान्तर सहज समाज-व्यवस्था उपस्थित की। भारतीय परम्परासे स्वीकृत अध्यात्म-सत्यका विस्तार किया, सत्याचरणका समुपदेश किया। निम्नस्तरमें स्थित साधारण जनके मनमें दृढ़ हीनता-ग्रन्थिका सर्वथा उच्छेद कर दिया। इन महापुरुषोंने जन-मनमें एक अभिनव विवेकपूर्ण जीवन-दृष्टिको प्रतिष्ठित करनेका प्रयास किया। आशा और विश्वासको उल्लसित एवं विकसित करनेवाला यह प्रयत्न अपने आपमें बहुत महत्त्व-पूर्ण था। सद्भावपूर्वक अनुष्ठित प्रयास ही कर्ताकी महिमाको प्रकट करता है न कि सफलता। इनके मार्गमें अनेक बाधाएँ थीं। उनकी गणना अभीष्ट नहीं है। इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि स्वाधीन चिन्तनमें कुंठा उत्पन्न होनेपर इन्होंने एक नूतन जीवन दृष्टिकी सृष्टि की थी। वह दृष्टि ही श्लाघनीय है—उधेड़ बुनके प्रपंचमें पड़नेकी कोई आवश्य-कता नहीं।

सन्त-दृष्टि :

इनका मत ही विलक्षण है। इनके आराध्य निर्गुण 'राम' हैं, दशरथनन्दन 'राम' नहीं। इस उपदेशमें वदतो-व्याघात दोष प्रतीत होता है। भला निर्गुण वस्तु आराध्य, उपास्य या प्रेम-विषय कैसे हो सकती है? इनकी वाणी लोक-भाषामें विरचित है। इनके 'राम' निर्गुण होनेपर भी परम अनुग्रहशील जगदुदय-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विलय-रक्षण-हेतु, दया-दाक्षिण्ययुक्त, परम-प्रेम-परायण तथा भक्तवत्सल हैं। इनकी वाणीसे स्पष्ट होता है कि ये सन्त-महात्मागण निर्विशेष या निष्क्रिय ब्रह्मका निरूपण नहीं करते। ये केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि गुणमय देह, प्रतिमा, प्रतीक आदिके द्वारा परमार्थ-सत्यका प्रकाशन नहीं होता। इन्होंने एक निर्गुण शब्दसे ही पर-अपर दोनों ही तत्त्वोंका अभिधान किया है। इस्लाम धर्मका जगत्-स्रष्टा 'अल्लाह' एक ईश्वर भी इस निर्गुण शब्दके द्वारा समाहृत होता है। यह निर्गुण 'राम' सर्वगत, सर्वातीत, सर्वरूप निखिलानन्द-सन्दोह एवं सर्व-रमणीय है। यह 'राम' भक्तोंपर अनुग्रह करता है। प्रपञ्चको परमानन्दका वितरण करता है। जप, स्मरण, गुण-कीर्तनसे प्रसन्न होता है। यह त्रिगुणात्मक देहमें अवतीर्ण नहीं होता। केवल मन्दिर, मस्जिद आदि उपासना-स्थलोंमें ही नहीं रहता, अपितु सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक है। यह पूजा, नमाज वाह्य प्रदर्शनोंसे या काय-क्लेश देनेवाली तपस्याओंसे नहीं मिलता। इसकी प्राप्तिके उपाय हैं—अहेतुक अनन्य भक्ति और सर्वात्मना शरणागति। साधनके प्रारम्भमें सद्गुरूपदेशके अनुसार प्रीति-रीतिसे आचरित नाम-स्मरण, गुण-कीर्तन, सतत ध्यान भगवत्प्राप्तिके उपाय हैं। सिद्ध भक्तके लिए ये सब निष्प्रयोजन हैं। सहज समाधि इसकी अन्तिम उपलब्धि है। उसका स्वरूप है—सब कुछ भगवान्‌की आराधना है। सारे कर्म ईश्वरकी पूजा हैं। भगवत्प्रेम ही महान् पुरुषार्थ है। निष्कर्ष यह कि अनन्य भक्ति ही मोक्षका साक्षात् उपाय है। सद्गुरुके द्वारा उपदिष्ट कर्म भक्तिके साधन हैं।

सन्त-मतमें 'माया' :

यह निर्गुण 'राम' अपनी माया-शक्तिसे सबकी रचना करता है। माया ही देवता, असुर एवं मनुष्योंको भटकाती रहती है। जो ईश्वरके साक्षात्कारमें विघ्न है। क्षणिक, परिवर्तनशील, गमनागमन-ग्रस्त—वह सब माया है या तो मायाकी रचना है। प्रपन्न भक्त ही इस मायाके पार जाते हैं। बड़े-बड़े सिद्ध योगी भी भटक जाते हैं, जब सिद्धि चमत्कारोंकी ओर झुक जाते हैं। इस्लाम मजहबमें शैतानको जो स्थान प्राप्त है, सन्त-मतमें मायाको वही स्थान प्राप्त है। अन्तर केवल इतना ही है कि शैतान अल्लाका शत्रु है, किन्तु माया 'राम' की मोह-जननी-शक्ति है। 'राम' मायाके स्वामी हैं। अपनी अनुग्रह-शक्तिसे भक्तोंकी रक्षा करते हैं, माया-प्रपञ्चमें फँसने नहीं देते।

गवेषण-परीक्षा :

आधुनिक पद्धतिसे गवेषणा करनेवाले विद्वानोंने कबीर आदि भक्तोंकी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वाणीका विश्लेषण-विवेचन किया है। उनकी अन्वेषणामें कहीं विवर्तवादका खण्डन, तो कही परिणामवादका तिरस्कार, कहीं अद्वैत सिद्धान्तका समर्थन और कहीं-कहीं विशिष्टाद्वैतका अनुसरण मिल जाता है। इन अनु-सन्धानोंसे हमारे-जैसे अल्पज्ञोंको व्यामोह ही होता है। क्या यह सब यथार्थ है? ये सहज भक्त अपने अनुभवमें आये सत्य-पदार्थको कहना चाहते हैं। वे भगवत्-तत्त्वका अवाङ्मनोगोचरत्व, ज्ञात वस्तु मात्रसे विलक्षणत्व एवं अनिर्वचनीयत्व समझानेके लिए ही विविध शैलीमें संकेत करते हैं। वाणीसे अगोचर अनिर्वचनीय वस्तु क्या शब्दोंके द्वारा व्याकृत की जा सकती है? केवल इंगित मात्रसे ही उसका संकेत शक्य है। शब्द अपने-अपने निश्चित अर्थके संकेत हैं। वे सीमातीत नियति-रहित परतत्त्वकी व्याख्या करनेमें समर्थ नहीं हैं। ये सन्त, भक्त शब्दरचना या अर्थ-कल्पनामें निपुण नहीं हैं। एक भक्तने दुःखके साथ अपने उद्गार प्रकट किये हैं—

> ये यत्राधिक कल्पनाकुशलिन-
> स्ते तत्र विद्वत्तमाः।
> स्वीयं कल्पनमेव शास्त्रमिति ते
> जानन्त्यहो पण्डिताः॥

'जो जिस वस्तुके सम्बन्धमें जितना अधिक कुशल कल्पनाशील है वे उस विषयके बड़े विद्वान् माने जाते हैं। वे अपनी कल्पनाको ही शास्त्र मानते हैं। धन्य है उनके पाण्डित्य को!'

सर्वत्र ऐसा देखनेमें आता है कि परतत्त्व-बोधक अनुभूतिमूलक वाणी व्याख्यानोंके पराधीन होकर अनेकार्थ-प्रतिपादक हो जाती हैं। अनुभवैक-चक्षु महात्मागण शब्दातीत तत्त्वको वैखरी वाणीसे प्रकाशित नहीं कर पाते। वे बड़े आश्चर्यके साथ कबीरके शब्दको दुहराते हैं: 'ऐसा लो नहीं तैसा लो। मैं केहि विधि कहौं अनूठा लो।'

सन्तवाणीपर परकालीन टीका-टिप्पणियाँ:

विक्रमकी उन्नीसवीं शताब्दीके बाद इनके शिष्य-प्रशिष्योंकी शाखामें शास्त्रज्ञ विद्वान् भी हुए हैं। इन विद्वानोंने कबीरकृत बीजकको श्रुति-स्वरूप माना है और टीका, व्याख्या आदिके निर्गुण मतको क्रमबद्ध-दर्शनके रूपमें उपस्थित करनेका प्रयास किया। रीवाँ-नरेश महाराज विश्वनाथ सिंहने कबीरके बीजकमें श्रुति, पुराण, आगम-सम्मत द्विभुज रामरूपको ही परमाराध्य स्थापित किया। साथ ही यह भी प्रतिपादन किया कि विशिष्टा-द्वैत मत ही इन्हें स्वीकार है। अनक शास्त्र-वचनोंसे समर्थित अत्यन्त परि-श्रमसे लिखित यह टीका भी सम्प्रदायमें आदर न पा सकी। इसके बाद महात्मा पूरनदासने 'तिर्या' नामकी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

टीका लिखी। उन्होंने बड़े घटाटोपके साथ अद्वैत मतका खण्डन किया। अद्वैतवादियोंके द्वारा प्रतिपादित ब्रह्मको कबीर मतमें धोखा बताया। धोखा-ब्रह्म धोखा भ्रान्तिवाची शब्द हैं। कहनेका अभिप्राय यह है कि यह अद्वैत ब्रह्म भ्रान्तिजन्य ही है। श्री जीव-गोस्वामी आदि वैष्णवोंके मतमें भी कहीं-कहीं इसी प्रकार अधूरे तत्त्वका नाम ब्रह्म रखा है। पूरनदासने अपनी टीकामें विशिष्टाद्वैत मतके अनुसार ही जीवके अणुत्व, नित्यत्व आदिका प्रति-पादन किया है। कहना न होगा कि उस समय प्रचलित लोकभाषा दार्शनिक विचारोंकी गम्भीरताको वहन नहीं कर सकती थी, अतएव यह टीका विद्वानोंके ध्यानको अपनी ओर आकृष्ट न कर सकी। फिर भी इसमें संशय नहीं है कि पूरनदासजीने लोकभाषामें एक नवीन विचार-पद्धति उपस्थित की। बहुत-से विद्वानोंने मीमांसक-पद्धतिका अनुसरण करके कबीरके बीजकगत वचनोंको चार मार्गोंमें विभक्त कर दिया—गुरुमुख, ब्रह्ममुख, मायामुख और जीवमुख। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि गुरुमुख-वचन ही प्रमाण हैं दूसरे नहीं। दूसरे विद्वानोंने भी अनेक निबन्ध लिखे। इस प्रकार सन्तोंकी वाणीमें युक्ति तर्क-प्रधान वाङ्मयका समावेश हो गया।

कबीरके बीजकके समान ही नानकको वाणीपर भी टीका-टिप्पणियाँ हुईं। उनमें भी वेदान्त-प्रतिपादित मतोंकी व्याख्या की गयी। दादूदयालके वचनोंपर भी शास्त्रविदोंके विश्लेषण-विलासका बोझ थोपा गया। परन्तु इन महापुरुषोंकी अनुभवसिद्ध, सहज, सरल वाणी उसी रूपमें स्वीकार करने योग्य है। इनकी विविध व्याख्याएँ बुद्धिबलसे ही आरोपित जान पड़ती हैं। वस्तुतः ये सन्त-भक्त सृष्टिके उदय-विलय आदि व्यापारोंको आगमा-नुसार ही वर्णन करते हैं। आगमविद् कहते हैं कि सकल परमात्माका वैभव है परमानन्द। उससे नाद और विन्दु-के क्रमसे सृष्टिकी उत्पत्ति हुई। कबीर मंसूर आदिके ग्रन्थोंमें वर्णित सिद्धान्तों-को इन शब्दोंमें संक्षिप्त कर सकते हैं।

परमानन्दविभवं
यत्तत्त्वं परतः परम्।
सकलत्वं गम्यमानं
सहजं भावमास्थितम् ॥१॥
अङ्कुरत्वं व्रजत्यस्मात्
परेच्छा संप्रवर्तते।
इदन्ताऽहन्तयोर्योगं
परं सोऽहमुदीर्यते ॥२॥
अचिन्त्यरूपतां याति
अक्षरं च ततो भवेत्।
तस्मात् सृष्ट्यै यतन् देवो
निरञ्जन इहोच्यते ॥३॥

अन्तमें :

ये सब आगममतका विस्तार ही है। यद्यपि इनका कहना है कि परम-तत्त्व द्वैताद्वैतसे विलक्षण है तथापि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रार्थना

भगवान् ! हमारी खुशियाँ, बन जायँ न रंज किसी की ।
भगवान् ! जिन्दगी अपनी, बन जाय न मौत किसी की ।। भग० ।।

प्रभु ! अपना लाभ किसीका, नुक्सान नहीं बन जाये ।
उन्नति की प्रगति हमारी, बन जाय न कुगति किसी की ।। भग० ।।

भगवान् ! हमें वह सुख दे, जिससे न किसीको दुःख हो ।
पग-पग पर विजय हमारी, बन जाय न हार किसी की ।। भग० ।।

भगवान् ! रमा तू अन्दर, तो ऐसी चाल चला दे ।
तेरी मर्जीके आगे, चल सके न चाल किसी की ।। भग० ।।

—रामाश्रय दीक्षित

(पृ० १७६ का शेष)

व्यवहारमें इनका मत विशिष्टाद्वैतका ही एक परिणत रूप है, ऐसा अनुमान होता है । इन सन्तोंने सूफी-साधकोंसे परम प्रेमका सिद्धान्त ग्रहण किया है, किन्तु दार्शनिक कल्पना-जल्पनाओंमें इनकी महिमा यथार्थरूपसे प्रकट नहीं होती । इन महात्माओंने निराशा-ग्रस्त संशयाक्रान्त जन-समाजमें एक अभिनव, अनिर्वचनीय आशा-विश्वासका दीपक प्रज्वलित किया, क्योंकि उनके हृदयमें भक्ति-भावनाका संचार किया और उन्हें शुद्ध शील और सदाचारकी ओर उन्मुख किया । इन भक्तोंने जन-मनको भगवद्भक्ति-परायण कर दिया । क्षुद्र; अस्थिर, भोग-वर्धक वस्तुओंके आकर्षण और आचरणसे विमुख किया, परम प्रेमस्वरूप भगवान्में विश्वास उत्पन्न किया, संघटित एवं आक्रामक धर्म-मगकी गतिको आगे बढ़नेसे रोक दिया । इन बातोंसे इनकी महिमा स्पष्ट हो जाती है ।

(म. श्री.[1])

१. वाराणसेय-संस्कृत-विश्वविद्यालयके दर्शन-सम्मेलनमें आचार्य द्विवेदीके दिये हुए संस्कृत प्रवचनके आधारपर ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विचार-चन्द्रोदय

राष्ट्रभाषा पतञ्जलि

स्वामी श्री निगमानन्दजी परमहंस

जो स्थान व्याकरणमें 'लघुकौमुदी'का, अलंकार शास्त्रमें 'काव्य-दीपिका'का, ज्योतिष-शास्त्रमें 'शीघ्रबोध'का न्याय-शास्त्रमें 'तर्कसंग्रह'का एवं पूर्वमीमांसामें 'अर्थसंग्रह'का है वही स्थान उत्तरमीमांसा-वेदान्तमें 'विचार-चन्द्रोदय'का है। वेदोंके शेखरीभूत वेदान्तशास्त्रमें प्रवेश पानेके लिए यह मुख्य द्वार है—पहली सीढ़ी है। इस छोटी-सी पुस्तिकामें वेदान्तके अभिमत सभी प्रमेय (पदार्थ) अत्यन्त सरल रीतिसे समझाये गये हैं। वेदान्तने प्रकृति, गुण आदि शब्द सांख्य आदि शास्त्रोंके ही गृहीत कर लिये हैं। सांख्यकी प्रकृतिसे वेदान्तकी प्रकृतिके अर्थमें भेद है। सांख्यवादी प्रकृतिको 'कर्ता' और जड़ मानते हैं। किन्तु जड़में इच्छा नहीं होती। 'उपाधि' और 'अध्यास' वेदान्तके अपने पारिभाषिक शब्द हैं—सांकेतिक शब्द हैं।

उपाधि साधारण जनताके लिए 'उपाधि' शब्दका अर्थ बखेड़ा है। पढ़े-लिखोंके लिए 'उपाधि' शब्द सम्मानका वाचक है। न्याय-शास्त्र-वाले उपाधि शब्दका अर्थ 'साध्यमें व्यापक और साधनमें अव्यापक' लेते हैं। परन्तु वेदान्तशास्त्र उपाधि शब्दका उसी अर्थमें प्रयोग करता है जिस अर्थमें व्याकरण 'विशेषण' शब्दका प्रयोग करता है। **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** सूत्रकी वृत्तिमें विशेषण शब्दका अर्थ 'भेदक' किया है—**भेदकं भेद्येन बहुलं समस्यते।** विशेषण, उपाधि, लक्षण और उप-लक्षण ये सभी भेदक हैं—व्यावर्तक हैं। इनकी व्यावर्तन करनेकी विधिमें थोड़ा-थोड़ा अन्तर है—फरक है।

विशेषण अपने विशेष्यको—भेद्यको—व्यावर्त्यको—जिसे अलग किया जा रहा है—स्वयं उसके साथ रह करके उसके सजातीयोंसे अलग करता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। जैसे 'काले आदमीको बुलाओ'में 'काला' रंग दूसरे आदमियोंसे उस आदमीको अलग करता है और स्वयं भी उसके साथ रहता है। इसलिए 'काला' शब्द यहाँ आदमीका विशेषण है।

उपाधि भी अपने व्यावर्त्यको उसके सजातीयोंसे ही अलग करती है; किन्तु स्वयं उसके साथ नहीं रहती। यही विशेषण और उपाधिका आपसमें अन्तर है। जैसे 'राम एक किलो दूध लाया'में किलोने कड़ाहीमें-के सजातीय दूधसे इस दूधको अलग तो कर दिया और स्वयं इसके साथ नहीं रहा—नहीं आया। इसलिए 'किलो' बरतन दूधका विशेषण नहीं; किन्तु उपाधि है।

लक्षण अपने व्यावर्त्यको सजातीय और विजातीय सभीसे अलग करता है तथा विशेषणकी भाँति स्वयं भी व्यावर्त्यके—लक्ष्यके साथ रहता है। विशेषण तो केवल उसके सजातीयोंसे ही उसे अलग करता है। किन्तु लक्षण उसके सजातीय और विजातीय दोनोंसे उसे अलग करता है। जैसे—'गलकम्बलवाली गौ होती है' में 'गलकम्बल' गौके सजातीय सभी पशुओंसे तथा विजातीय पुरुषों आदिसे गौको अलग करता है और स्वयं भी विशेषणकी भाँति उसके साथ रहता है। 'गलकम्बल' गौको विजातीय पशुओं और पुरुषोंसे अलग करता है। अतः यह विशेषण नहीं तथा स्वयं लक्ष्यके साथ रहता है, अतः उपाधि नहीं; किन्तु यह गौका लक्षण है।

उपलक्षण उपाधिकी भाँति व्यावर्त्यसे अलग तो रहता है। परन्तु उसका उपाधिकी तरह व्यावर्त्यके साथ रहना जरूरी नहीं होता। जैसे किसीने पूछा—'रामका घर कौन-सा है?' उत्तर मिला—जिस पर कौआ बैठा है। कौआ उड़ गया। फिर भी कौएने रामके घरको दूसरे घरोंसे अलग करके जता दिया। उपाधि सदा पास रह करके ही जताती है। इतना ही उपाधि और उपलक्षणमें अन्तर है।

इसी प्रकार ज्ञान भी ब्रह्मका उपलक्षण है। ज्ञान पहले अज्ञानको निवृत्त करके ब्रह्मको जताता है और फिर स्वयं भी निवृत्त हो जाता है। इसीलिए ब्रह्मको ज्ञानसे उपलक्षित कहते हैं। जैसे साबुन कपड़ेकी मैलको निकाल देती है और स्वयं भी कपड़ेमें-से निकल जाती है। वैसे ही ज्ञान अज्ञानको निवृत्त करके स्वयं भी निवृत्त हो जाता है। नित्य प्राप्त हमारे स्वरूपमें बेचारा ज्ञान इससे अधिक और कर भी क्या

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सकता है ? विशेषणवालेको विशिष्ट, उपाधिवालेको उपहित, लक्षणवाले-को लक्षित एवं उपलक्षणवालेको उपलक्षित कहते हैं।

अध्यास

जो चीज जहाँ नहीं वहीं उसका भान और ज्ञान होना अध्यास=भ्रांति है [देखिए छठी कला[1]] जिनका अध्यास होता है वे अध्यस्त-कल्पित-आरोपित-अनिर्वचनीय-मिथ्या-कहलाते हैं। जड़ और चेतनका भी अध्यास होता है। अध्यस्त होनेके कारण चेतन भी मिथ्या-कल्पित होना चाहिए। इसमें इतना ध्यान रखना चाहिए कि जड़का=अनित्य पदार्थों-का स्वरूप और सम्बन्ध दोनों अध्यस्त होते हैं तथा चेतनका=नित्य पदार्थका अकेला सम्बन्ध ही अध्यस्त होता है; किन्तु स्वरूप अध्यस्त नहीं होता। इसलिए अनित्य पदार्थोंके स्वरूप और सम्बन्ध दोनों मिथ्या होते हैं। नित्य पदार्थका अकेला सम्बन्ध ही अध्यस्त होता है; इसलिए वही मिथ्या होता है, स्वरूप मिथ्या नहीं होता। माया और ब्रह्म दोनों अनिर्वचनीय हैं। माया न तो चेतनकी भाँति सत् है और न ही वन्ध्या-पुत्रकी भाँति असत् है। सत् और असत् उभयसे विलक्षण होनेके कारण माया अनिर्वचनीय है तथा ब्रह्म मन और वाणीका अविषय होनेके कारण अनिर्वचनीय है। इसलिए ब्रह्म मिथ्या नहीं।

जिसमें अज्ञानका अध्यास होता है वह अज्ञानवान् (अज्ञानी) कहलाता है। इस दृष्टिसे ब्रह्म भी अज्ञानवान् (अज्ञानी) ठहरता है। केवल अज्ञानी ही नहीं; किंतु महा अज्ञानी कहिए। क्योंकि ब्रह्ममें मायाका=महा अज्ञानका अध्यास है। इसलिए अज्ञानी होना कोई बुरी बात नहीं। हाँ, अज्ञानका अभिमानी होना अवश्य बुरी बात है। जीवको अपने अज्ञानका अभिमान है और ब्रह्मको किसी प्रकारका कोई अभिमान नहीं। देखा जाये तो अभिमान भी सर्वथा बुरी चीज नहीं। कारण कि आभासकी=चिदाभासकी सात अवस्थाएँ हैं, जैसे—१. अज्ञान, २. आवरण, ३. भ्रांति, ४. परोक्ष ज्ञान, ५. अपरोक्ष ज्ञान, ६. शोकनाश

---

१. 'विचार-चन्द्रोदय' पं० श्रीपीताम्बर जी कृत सद्ग्रन्थ है इसकी विशिष्ट व्याख्या 'निगम बाबा'ने प्रस्तुत की है। इस पुस्तकके मिलनेका पता है—**श्री सुरेन्द्रमुनिजी,** अवधूत जगतराम-आश्रम, कनखल, हरिद्वार (उ० प्र०) मूल्य ४.०० ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और ७. हर्ष। इनमें-से आदिकी तीन अवस्थाएँ बन्धनमें डालती हैं और इसके आगेकी चार अवस्थाएँ बन्धनसे छुड़ाती हैं। इसलिए आदिकी तीन अवस्थाओंका ही अभिमान परित्याग करने योग्य है। आगेकी चार अवस्थाओंका अभिमान परित्याग करनेके योग्य नहीं।

यहाँ भ्रांति नाम विक्षेपका है। चिदाभास विक्षेपके अन्तर्गत आता है। अज्ञान और आवरण विक्षेपसे पहले आते हैं। फिर वे दोनों अवस्थाएँ बादमें उत्पन्न होनेवाले चिदाभासको कैसे हो सकती हैं? ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए। यद्यपि उस समय विक्षेप उत्पन्न नहीं हुआ तो भी उसके संस्कार तो वहाँ पड़े ही हैं। इसलिए वे अज्ञान और आवरण भी विक्षेपकी = चिदाभासकी ही अवस्थाएँ हैं, चेतनकी नहीं।

वास्तवमें सामान्य ज्ञान और सामान्य अज्ञान किसीके बन्धु और विरोधी भी नहीं होते। विशेष ज्ञान और विशेष अज्ञानका ही आपसमें बाध्य-बाधक भाव होता है।

१. जब 'मैं हूँ' ऐसा कहते हैं तब अज्ञान उपाधिवाले चेतनमें अहंकारका अध्यास होता है।

२. जब 'मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ' ऐसा बोलते हैं तब अन्तःकरणकी उपाधिवाले चेतनमें अन्तःकरणके धर्म 'सुख-दुःख'का अध्यास होता है।

३. जब 'मैं अन्धा हूँ, मैं बहरा हूँ' ऐसा बोलते हैं तब अन्तःकरणकी उपाधिवाले चेतनमें इन्द्रियोंके धर्मोंका (अँधलापन, बहरापन आदिका) अध्यास होता है।

४. जब 'मैं मनुष्य हूँ' ऐसा बोलते हैं तब अन्तःकरणके तथा इन्द्रियोंके धर्मोंकी उपाधिवाले चेतनमें देहके धर्मों सहित देहका अध्यास होता है।

५. जब 'मैं स्थूल हूँ, मैं कृश हूँ' ऐसा बोलते हैं तब देहधर्मोंकी उपाधिवाले चेतनमें देहके धर्मोंका अध्यास होता है। इसी भाँति देह-धर्मोंकी उपाधिवाले चेतनमें स्त्री-पुत्र आदिके सुख-दुःख आदि धर्मोंका अध्यास होता है।

वह चेतन इन्द्रियोंका विषय न होनेसे प्रत्यक्ष नहीं। मनका विषय न होनेसे अपरोक्ष नहीं। 'मैं' को अनुभूति होनेसे परोक्ष नहीं। वह तो स्वयंप्रकाश साक्षात् अपरोक्ष है। वह मैं हूँ, मैं वह हूँ। वह तू है, तू वह है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'तत्त्वानुसन्धान' आदि ग्रन्थोंमें अपरोक्ष शब्दको प्रत्यक्षका पर्याय माना है। वहाँ मनको इन्द्रिय माननेवालोंके मतके अनुसार वैसा लिख दिया है। नहीं तो इन्द्रियोंके सम्मुखको प्रत्यक्ष, इन्द्रियोंसे ओझलको परोक्ष, साक्षीसे भास्य सुख-दुःखको अपरोक्ष तथा आत्माको साक्षात् अपरोक्ष कहते हैं। "साक्षात् अपरोक्षात् ब्रह्म" वही या यही ब्रह्म है।

ईश्वर

वेदान्तके सम्बन्धमें बहुत-से लोगोंकी ऐसी धारणा बन गयी है या बना दी गयी है कि "वेदान्त ईश्वरको नहीं मानता, यदि मानता भी है तो अनित्य मानता है। संसारको मिथ्या बतलाता है और अन्य शास्त्रोंका खण्डन करता है आदि आदि।"

लुधियाना (पंजाब)में वृन्दावनके एक वैष्णव आचार्य आते हैं। यदि किसी श्रोताके मुखसे कभी भूलसे वेदान्तका नाम निकल जाये तो वे उस उच्चारण करनेसे उत्पन्न पापका प्रायश्चित्त करानेके लिए महामन्त्र (हरे राम हरे राम) का जाप कराते हैं। मेरे एक जैनी बन्धुने मुझे बताया है कि जैनी महात्मा भी अपने अनुयायियोंसे एक दिन प्रायश्चित्त करवाते हैं कि इस सालमें जो हमसे जाने-अनजाने किसी देवी-देवताका नाम बरबस निकल गया हो तो तज्जन्य पापसे हमें मुक्त किया जाए। यह सब साम्प्रदायिक दुरभिसन्धि एवं दुराग्रह है जो परस्परके सहजात भ्रातृभावको विनष्ट कर देता है जिससे राष्ट्र निर्बल तथा छिन्न-विच्छिन्न हो जाता है। यह प्रवृत्ति अत्यन्त निन्दनीय है जो सर्वथा रुकनी चाहिए। अस्तु।

छह दर्शन आस्तिक हैं=वेदका अनुसरण करते हैं और छह दर्शन नास्तिक हैं=वेदका अनुसरण नहीं करते। वेदके अनुसारी दर्शनोंमें—

१. न्यायदर्शन ईश्वरकी सिद्धि अनुमानसे करता है। न्यायके एक विद्वान्ने तो यहाँ तक कह डाला कि "ओ, ईश्वर! तू मेरी इतनी अवहेलना करता है। याद रख, तेरा होना और न होना मेरे हाथकी बात है—"मदधीना तव स्थितिः।" न्यायदर्शनका ईश्वर केवल तर्क-वितर्ककी=लड़ाई-झगड़ा करनेकी वस्तु है। न्यायमतमें भी मुक्ति=दुःखोंसे छुटकारा तत्त्व-ज्ञानसे ही होता है। सोलह पदार्थोंके ज्ञानका नाम ही तत्त्वज्ञान है। इन सोलह पदार्थोंमें ईश्वरका नाम तक नहीं आता।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२. **वैशेषिक-दर्शन** भी सात पदार्थोंके साधर्म्य और वैधर्म्यके ज्ञानसे मुक्ति=सब दुःखोंसे छुटकारा मानता है। उस ज्ञानमें भी कहीं ईश्वरका नाम तक नहीं आया। इस दर्शनमें भी ईश्वरका बहुत ही गौण स्थान है।

३. **सांख्यदर्शन** "ईश्वरासिद्धेः" (सां० द० १-९२) कहता है कि अनुमान प्रमाणसे ईश्वरकी सिद्धि नहीं हो सकती। मुक्ति=सब दुःखोंसे छुटकारा तो तत्त्वज्ञानसे ही होगा। तत्त्वज्ञान है प्रकृति-पुरुषके पार्थक्य-के ज्ञानका नाम।

४. **योगदर्शन** कहता है कि पुरुष-विशेष ईश्वर है। उसे किसी प्रकारके दुःख-दर्दका स्पर्श नहीं होता। वह सबका गुरु है—सबसे बड़ा है। उसकी उत्पत्तिके समयका किसीको पता नहीं चलता। इन योगियों-का ईश्वर भी चित्तके विक्षेपको दूर करनेवाले उपायोंमें-से एक उपाय ही है। मुक्ति=सब दुःखोंसे छुटकारा तो प्रकृति और पुरुषके परिपक्व भेद-ज्ञानसे ही होता है। उसका साधन है एकमात्र योग। योग-दर्शनमें भी ईश्वरका बहुत ही गौण स्थान है।

५. **पूर्वमीमांसा** दर्शन भी स्वर्ग आदि अदृष्ट फलकी प्राप्तिके लिए यज्ञ-याग आदिका विधान ही बताता है। जीव अपने कर्मोंके अनुसार सुख-दुःखका उपभोग करता रहता है। उसमें ईश्वरका क्या लेना-देना है? अर्थात् ईश्वर माननेकी कुछ आवश्यकता नहीं। इसलिए पूर्वमीमांसा दर्शनने ईश्वरको नहीं माना। मुक्ति यज्ञकर्मोंका फल अथवा परिणाम है।

६. **वेदान्तदर्शन** ने इन सब दर्शनोंकी अपेक्षा ईश्वरको बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। वेदान्तका ब्रह्म तो न खाता है, न पीता है, न करता है, न धरता है, न हिलता है, न डुलता है, न नेड़े है, न दूर है। उस परम विशुद्ध ब्रह्ममें मायाकी छाया कहाँ? जब मायाकी छाया पड़ी तभी वह ईश्वर बन बैठा और लगा हजारों हाथोंसे सृष्टि बनाने। "ब्रह्मैव ईश्वरतां व्रजेत्" [पञ्चदशी, प्रकरण ३, श्लोक ४०] अर्थात् जिसमें मायाकी छाया नहीं वह ब्रह्म। जिसके हाथमें मायाकी चोटी वह ईश्वर और जिसकी चोटी मायाके अविद्याके हाथमें वह जीव। माया जीवको नचाती है और ईश्वर मायाको नचाता है। ब्रह्म न तो कभी नाचता है और न कभी किसीको नचाता है। वेदान्त-दर्शन दूसरे दर्शनों-से कहता है कि भाई, लक्षण और प्रमाणसे वस्तुकी सिद्धि नहीं होती।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उलटा वस्तुसे ही = चेतनसे ही लक्षण और प्रमाण सिद्ध होते हैं। दूसरे, ईश्वर माननेकी चीज नहीं, किन्तु ईश्वर जाननेकी चीज है। एक बार जानकर तो देखो। जाना कि ईश्वर बने।

भक्त्या मामभिजानाति, यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा, विशते तदनन्तरम्॥
[गी. १८.५५]

अनन्य भक्तिसे जीव मुझ ईश्वरको जान लेता है कि जैसा मैं हूँ और जो हूँ। ठीक-ठीक जान लेनेपर वह मुझमें ही मिल जाता है। वेदान्त जीव और ब्रह्मका अभेद बताता है। जहाँ-जहाँ ईश्वरको अनित्य कहा गया है वहाँ-वहाँ ईश्वर शब्दका अर्थ 'ईश्वरभाव' लेना है। ईश्वर अनित्य नहीं किंतु ईश्वरभाव = ईश्वरपना अनित्य है।

वेदान्त दर्शन कहता है कि संसार मिथ्या है। मिथ्याका मतलब है—न हम संसारको 'हाँ' कह सकते हैं और न हम संसारको 'ना' कह सकते हैं। 'हाँ' इसलिए नहीं कह सकते कि ज्ञानसे इसका बाध हो जाता है और सुषुप्तिमें यह कहाँ है ? 'ना' इसलिए नहीं कह सकते कि सामने दिखाई दे रहा है। तो क्या संसार बिलकुल है ही नहीं ? कैसे कहें, दिखाई जो दे रहा है। तब तो फिर संसार है ? कैसे कहें, सुषुप्तिमें जो नहीं होता। तो फिर इसे क्या कहें ? अनिर्वचनीय, मिथ्या, कल्पित, आरोपित, अध्यस्त, सत्-असत् उभयसे विलक्षण जो मरजी हो कह सकते हो।

क्या ज्ञान हो जानेके बाद यह संसार दिखाई नहीं देता ? जैसे जाग जानेपर सपना दिखाई नहीं देता।

कौन कहता है दिखाई नहीं देता ? देता है। तुम अपना दायाँ हाथ हिलाओ तो शीशेमें तुम्हारा बायाँ हाथ हिलेगा। तुम अपना दायाँ कान पकड़ो शीशेमें तुम्हारा बायाँ कान पकड़ा जायेगा। वास्तवमें हिलता, पकड़ा जाता दायाँ ही है। शीशेके कारण ऐसा भ्रम हो रहा है। अच्छी तरह जाँच-पड़ताल कर लेनेपर तुम्हारा भ्रम दूर हो जायेगा—भ्रान्तिकी निवृत्ति हो जायेगी। भ्रान्ति दूर हो जानेपर भी प्रतीति वैसी ही होती रहेगी। इसी प्रकार ज्ञान भी भेद-भ्रांतिकी शांति करता है। भेद प्रतीतिको मिटाता नहीं। आत्मज्ञान भेदभ्रान्तिका विरोधी है, भेदभानका विरोधी नहीं। भ्रांति दूर हो जानेपर भी जबतक अन्तःकरण और इन्द्रियरूप उपाधि विद्यमान है तबतक संसार जैसा है वैसा ही

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दिखाई देता रहेगा। भाई, बाहरका दीखनेवाला संसार नहीं मिटाना; किन्तु भीतरका दुःख देनेवाला संसार मिटाना है। ईश्वरके बनाये संसार-को हम कैसे मिटा सकते हैं ? हाँ, अपने बनाये संसारको अवश्य मिटाया जा सकता है और वही मिटाना भी चाहिए। क्योंकि वही दुःखदायी है। स्मरण रहे—निरुपाधिक भ्रमस्थलमें भ्रांतिके निवृत्त हो जानेपर प्रतीति नहीं होती। जैसे रज्जुका ज्ञान हो जानेपर फिर सर्पकी प्रतीति नहीं होती। किन्तु प्रपञ्चकी प्रतीति सोपाधिक भ्रम है।

वेदान्त द्वैतवादी नहीं। क्योंकि स्वयंसिद्ध द्वैतमें वेदान्तकी क्या अपूर्वता है ? तथा "नेह नानास्ति किञ्चन" आदि अद्वैतबोधक अनेक श्रुतियोंसे विरोध भी आता है। तो फिर अद्वैतवादी है ? नहीं भाई ! ऐसा भी नहीं। कारण कि सुषुप्ति और प्रलयमें अद्वैत स्वयं सम्पन्न हो जाता है। इसलिए वेदान्त 'द्वैतबाधपूर्वक अद्वैतबोधवादी' है। आजतक विश्वके साहित्यमें कल्पनाकी इतनी ऊँची उड़ान कोई नहीं भर सका। साम्यवादी कम्युनिस्ट भी केवल पेट-रोटी-कपड़े तक ही पहुँच सके हैं।

किसी वस्तुकी उत्पत्तिका आकार-प्रकार जाननेके लिए 'कैसे', उसका मूलकारण एवं उद्देश्य जाननेके लिए 'क्यों' तथा उसकी वर्तमान स्थिति-अवस्था जाननेके लिए 'क्या' प्रश्न किया जाता है। 'कैसे ?' का उत्तर विज्ञान—साइन्स देता है, 'क्यों ?' का उत्तर धर्मशास्त्र देता है और 'क्या ?' का उत्तर वेदान्त देता है। वेदान्त किसीका खण्डन-मण्डन कभी नहीं करता। वह तो बार-बार समझाता है। वेदान्तका निर्णय है—फैसला है कि अन्तःकरणका मल—दोष दूर करनेके लिए शुभ कर्म करो, अन्तःकरणका विक्षेप (चंचलता) दोष दूर करनेके लिए भक्ति—उपासना करो और अन्तः-करण का अज्ञान—आवरण—दोष दूर करने के लिए ज्ञानका सहारा लो।

ईश्वरको वेदान्त दर्शनने जितना भलीभाँति जाना-पहचाना है उतना अन्य किसी भी आस्तिक-दर्शनने नहीं जाना-पहचाना। गीताकी बात छोड़ दीजिए। गीताके लिए तो सब दुःखोंकी निवृत्तिके उपायोंका एक-मात्र केन्द्र ईश्वर ही है। उस ईश्वरके साथ चित्तके संयोगका नाम ही 'योग' है। गीता ईश्वरका साथ छोड़कर एक कदम भी इधर-उधर नहीं जाती और ईश्वर भी एक क्षणके लिए गीताको अपने गलेसे अलग नहीं करता। कहाँतक कहें—ईश्वरने गीताको सर्वशास्त्रमय ज्ञानका छोटा-सा विश्वकोश बना करके सर्वश्रेष्ठ सिद्ध कर दिया है और गीताने

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भी सर्वाश्रय ईश्वरको सर्वश्रेष्ठ बनाकर विश्वरूप प्रसिद्ध कर दिया है। ईश्वरके कारण ही गीताका घर-घरमें प्रवेश-प्रचार हुआ है और गीताके कारण ही ईश्वरका घर-घरमें प्रेम-प्रसार हुआ है।

केवलं निर्गुणोऽस्मि

जैसे बीजमें-की निराकार विशेषता वृक्षके रंग-रूपमें साकारता ग्रहण कर लेती है; वैसे ही माता-पिताका निराकार प्यार ही पुत्रके रंग-रूपमें साकार हो जाता है। माता-पितासे आये हुए संस्कार ही पुत्रमें पुस्तकोंके पानीसे अङ्कुरित होते रहते हैं। उन अङ्कुरोंकी रखवाली करनेवाले अध्यापकजन होते हैं। जब वे ही संस्काररूपी बीज जमकर=अङ्कुरित होकर पल्लवित, पुष्पित और फलित हो जाते हैं तब हमारी दृष्टि बीज परसे उठकर फलपर चली जाती है। बीजमें जो रसमय मूल 'नार' तत्त्व है उसपर प्रत्येककी दृष्टि नहीं जाती। वह 'नार' तत्त्व जिसका अयन है—घर है—स्थान है उस 'नारायण' को तो कोई-कोई ही जान पाता है। वही सबका मूल है और वही सबका फूल है। बस, सभी कुछ वही-वही है। बीचमें तो एक लीला है—खेल है जो हम सब खेलते रहते हैं।

मेरे इस खेलमें 'राष्ट्रभाषाका शुद्ध रूप' श्रीरामचन्द्रजी वर्माके 'हिन्दी प्रामाणिक कोष'का, 'हिन्दीका मौलिक व्याकरण' आचार्य किशोरीदासजी वाजपेयीके उद्घोषका, 'वैरागी वीर एवं जिनसे प्रेरणा मिली' त्रिपिटकाचार्य श्रीस्वामी कूटस्थानन्दजी शास्त्रीकी वाह-वाहका, वेदान्त-विषयक बोध स्वामी श्री अखण्डानन्दजी सरस्वतीके प्रवचन-प्रवाहका तथा 'श्रीरामभद्रकी मूक कार्य-कारिता' पण्डित श्री रामकिंकरजी उपाध्यायके 'मानस-मन्थन' के प्रभावका ही परिणाम है—फल है।

वैसे तो मैं बिलकुल निर्गुण हूँ—मुझमें कोई गुण नहीं। साफ सोलह आने कोरेका कोरा हूँ। वह भी सबमें एक नम्बर हूँ—अकेला ही हूँ। इतना बड़ा निर्गुण हूँ कि सबके सब मेरे पेटमें समा जाते हैं। इस बातका मैं स्वयं साक्षी हूँ। किसी प्रमाणकी कोई आवश्यकता नहीं। सभी प्रमाण मुझसे ही प्राणवान् हैं। मैं साक्षात् अपरोक्ष हूँ—"साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च"।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पुर्वानुवृत्त

चरकमुनिका अध्यात्म-दर्शन

डॉ० सन्तनारायण श्रीवास्तव्य

संस्कृत विभाग : इलाहाबाद विश्वविद्यालय

• आत्माका विभुत्व

चरकमुनिने आत्मकी सर्वव्यापकताको स्वीकार करते हुए उसे विभु, सर्वंग और सर्वंगत कहा है।[1] जब अग्निवेशने आत्माकी व्यापकतापर आक्षेप करते हुए कहा—यदि आत्मा सर्वंगत है, तो सभी (सर्वाश्रयस्थ) वेदनाओंका ज्ञान उसे क्यों नहीं होता है? तब महर्षि आत्रेयने उसका परिहार इस प्रकार किया—'सर्वव्यापक होनेपर भी (परिच्छिन्न देहादिका उपादान करनेके कारण) देही आत्मा अपने-अपने स्पर्शनेन्द्रिययुक्त शरीरमें ही होनेवाली सुखदुःखरूप वेदनाओंको जानता है, सभी आश्रयोंमें रहनेवाली वेदनाओंको नहीं जान पाता है।'[2]

जीवकी अल्पज्ञताका जो समाधान अद्वैतवेदान्तमें उपलब्ध होता है, वही समाधान यहाँ चरकमुनिने प्रस्तुत किया है। अतः यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शङ्कराचार्यने किसी नवीन दर्शनका प्रणयन नहीं किया है, प्रत्युत श्रुतिस्मृति-प्रतिपादित, महाभारत तथा चरकसंहितादि प्राचीनग्रन्थोंमें निरूपित औपनिषद-दर्शन ही शङ्कराचार्यका प्रतिपाद्य है। 'देही' यह आत्माका हेतुगर्भ विशेषण है, अर्थात् देहावच्छिन्न होनेके कारण। शरीरके लिए 'संस्पर्शनेन्द्रिय' शब्दका प्रयोग यह प्रदर्शित करनेके लिए किया गया है कि अपने शरीरमें भी जहाँ केशनखादिमें स्पर्शनेन्द्रिय नहीं है, वहाँ आत्माको किसी भी प्रकारकी सुखदुःखरूप अनुभूति नहीं

---

१. द्रष्टव्यम् (शारीरस्थान १.५, ६१, ७५, ७९, ८०; २.३२ तथा ४.८।)

२. देही सर्वगतोऽप्यात्मा स्वे स्वे संस्पर्शनेन्द्रिये।
सर्वाः सर्वाश्रयस्थास्तु नात्मातो वेत्ति वेदनाः॥ (शारीरस्थान १.७९)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होती है। चूँकि आत्मा सर्वंगत और महान् हैं, इसीसे उसका विभुत्व भी सिद्ध होता है।[१] विभुत्वका अर्थ है सर्वपरिमाणयोगी होना, अर्थात् विश्वके सभी परिमाण इस आत्माके ही परिमाण हैं। जैसे हाथीके पैरमें सभीके पैर समा जाते हैं, वैसे ही विश्वके समस्त परिमाण आत्मामें समा जाते हैं। यद्यपि आकाश भी सर्वत्र उपलब्ध होनेके कारण सर्वंगत कहा जाता है,[२] तथापि वह 'महान्' नहीं है। आकाशका व्यवच्छेद करनेके लिए भी यहाँ आत्माको सर्वंगत होनेके साथ महान् कहा गया है। आत्माकी यह महत्ता ही ब्रह्म और भूमा इत्यादिके रूपमें पर्यवसित हुई है। आकाशादिमें यह बात नहीं है, वे तो आत्माके एक अंशमात्रमें स्थित हैं।[३]

आत्माके विभुत्वपर अग्निवेशने एक दूसरी शङ्का यह उठायी कि यदि आत्मा विभु है, तो पर्वत और दीवालके पीछेकी वस्तुको क्यों नहीं देख पाता है? आत्रेयने कहा—'मनको समाहित करनेके द्वारा योगियोंका आत्मा छिपी हुई वस्तुओंको भी देख सकता है। यद्यपि आत्मा सर्वयोनिगत अर्थात् सभी शरीरोंमें व्यापक है, तथापि देहोत्पादक कर्मका अनुसरण करनेवाले मनके साथ नित्य-सम्बद्ध होनेके कारण उसे एक योनिमें स्थित अर्थात् एक शरीरसे सम्बद्ध समझना चाहिए।'[४] तात्पर्य यह है कि व्यापक होनेके कारण यद्यपि आत्माके लिए पर्वत या दीवाल इत्यादिका व्यवधान नहीं हो सकता है, तथापि उसकी उपलब्धिका साधनभूत जो मन है, वह एक शरीरमात्रमें व्यवस्थित है, अतः शैलकुड्यादिसे तिरोहित वस्तुको देखनेमें वही व्यवधान बनता है। मोक्षपर्य्यन्त मनका आत्मासे नित्यसम्बन्ध रहता है, और मन देहनिर्वर्त्तक कर्मका अनुसरण करनेके कारण देहसे सम्बद्ध होता है। फलतः देह और मनसे सम्बद्ध होनेके कारण आत्माकी उतनी ही सामर्थ्य रह जाती है, जितनी देह और मनकी होती है। किन्तु जब कोई योगी मनकी वृत्तियोंको एकाग्र करके देह तथा मनोवृत्तियोंके आभाससे

---

१. विभुत्वमत एवास्य यस्मात् सर्वगतो महान्। (शारीरस्थान १.८०)
२. यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते। (श्रीमद्भगवद्गीता १३.३२)
३. पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।
(ऋक्संहिता १०.९०.३)
४. मनसश्च समाधनात् पश्यत्यात्मा तिरस्कृतम्।
नित्यानुबन्धं मनसा देहकर्मानुपातिना॥
सर्वयोनिगतं विद्यादेकयोनावपि स्थितम्।
(शारीरस्थान १.८०-८१)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रहित हो जाता है, उस समय देह और मनका व्यवधान हट जानेसे वह तिरोहित पदार्थोंको भी देखनेमें समर्थ हो जाता है।

आत्माको कई स्थलोंपर विश्वरूप कहा गया है।[1] **विश्वानि रूपाणि यस्य स विश्वरूपः** इस व्याख्यासे विश्वके सभी रूप उसीके रूप हैं। गिरि-समुद्रादि तथा ग्रह-नक्षत्रादि सब उसीके रूप हैं। वह स्वयं ही विश्वके रूपमें हो गया है, जैसा कि उपनिषद् कहती है—'उसने सङ्कल्परूप तप करके, यह जो कुछ है, इस सबकी रचना की। इसे रचकर वह इसीमें अनुप्रविष्ट हो गया और अनुप्रवेश करके वह सत्य आत्मा यह जो कुछ है—मूर्त्त अमूर्त्त, निर्वचनीय और अनिर्वचनीय, आश्रय और अनाश्रय, जड और चेतन तथा सत्य और अनृत—इन सबके रूपमें हो गया।'[2] इसके अतिरिक्त **इदं सर्वं यदयमात्मा** (बृहदा० २.४.६), **आत्मैवेदं सर्वम्** (छान्दोग्य० ७.२५.२), **सर्वं खल्विदं ब्रह्म** (छान्दो० ३.१४.१), **ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्तात्** (मुण्डक० २.२.११), तथा **सर्वꣳह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म** (माण्डूक्य० २) इन वाक्योंके द्वारा उपनिषदोंमें आत्माकी विश्वरूपताका गान किया गया है। अतः आत्माको विश्वरूप कहनेके कारण चरकसंहिता साङ्ख्य तथा न्यायवैशेषिकसे अपना मतभेद प्रकट करती है तथा श्रुतिस्मृतिप्रतिपादित सिद्धान्तका अनुवर्त्तन करती है।

आत्माके विश्वरूप होनेसे **विश्वकर्मा सर्वशरीरभृत्** और **एकः** इत्यादि विशेषणोंकी भी सङ्गति लग जाती है।

शरीरेन्द्रियादिका प्रयोक्ता (प्रवर्त्तक या प्रेरक) होनेके कारण आत्माको तीन स्थलोंपर **प्रधान** भी कहा गया है। शारीरस्थान (४.८)में आत्माके पर्यायोंके बीच प्रधान भी गिना गया है। शरीरस्थान (७.१६)में **यत्प्रयोक्तृ तत्प्रधानम्** कहकर प्रधानसञ्ज्ञक आत्माका प्रेरकत्व बताया गया है। तथा शारीरस्थान (७.१८) में भी आत्माके लिए प्रधान शब्दका प्रयोग किया गया है। इससे भी साङ्ख्यदर्शनसे चरकमुनिका वैमत्य सिद्ध होता है। साङ्ख्यदर्शनमें त्रिगुणात्मिका मूलप्रकृतिको प्रधान कहा गया है, और पुरुष या आत्माको उससे

---

१. द्रष्टव्यम् (शारीरस्थान २.३२, ३.१४, ४.८ तथा चिकित्सास्थान २.४.४९)

२. स तपस्तप्त्वा इदꣳ सर्वमसृजत यदिदं किञ्च। तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत्, निरुक्तं चानिरुक्तं च, निलयनं चानिलयनं च विज्ञानं चाविज्ञानं च, सत्यं चानृतं च सत्यमभवत्, यदिदं किञ्च। (तैत्तिरीय० २.७.१)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्वथा भिन्न और उदासीन बताया गया है। जबकि यहाँपर पुरुष या आत्माको प्रकृतिसे अभिन्न प्रधानके रूपमें स्वीकार किया गया है। मूलप्रकृति और पुरुष इन दोनोंको चरकसंहितामें एकत्वेन ग्रहण किया गया है और उसे 'अव्यक्त' सञ्ज्ञा भी प्रदान की गयी है। चरकका यह सिद्धान्त उपनिषद् तथा महाभारतादि ग्रन्थोंका अनुगामी है, न कि परवर्ती साङ्ख्यका।

● क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ

चरकसंहिताकी रचनाके बहुत पहले श्रीमद्भगवद्गीताके तेरहवें अध्यायमें क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका विवेचन प्राप्त होता है। चरकसंहितामें उसी गीतोक्त क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-प्रविभागका प्रतिविम्ब लक्षित होता है। आकाशादि पाँच सूक्ष्मभूत, बुद्धि, अव्यक्त और आठवाँ अहङ्कार—इन आठको समस्त स्थावर-जङ्गम प्राणियोंकी प्रकृति कहा गया है। इनके अतिरिक्त सोलहको 'विकार' सञ्ज्ञा दी गयी है। ये विकार हैं—पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, मन और पाँच अर्थ (आकाशादि स्थूलभूत)। इन चौबीस तत्त्वोंमें अव्यक्तको छोड़कर शेष तेईसको क्षेत्र कहा गया है, तथा ऋषियोंने अव्यक्तको इस क्षेत्रका ज्ञाता क्षेत्रज्ञ समझा है।[1] चरकसंहितामें 'अव्यक्त' पदसे अव्यक्तनाम्नी मूलप्रकृतिसे संयुक्त चेतन पुरुषको ग्रहण किया गया है, ऐसा हम पहले भी कह आये हैं। जब कि ईश्वरकृष्णकी साङ्ख्यकारिकामें 'अव्यक्त' पदसे त्रिगुणात्मक अचेतन मूलप्रकृतिमात्रको ग्रहण किया गया है। चरकका मत अद्वैत-वेदान्तका अनुगामी है। अव्यक्तको क्षेत्रज्ञ कहनेसे उसका चेतन होना सिद्ध होता है। अन्य भी अनेक स्थलोंपर चेतन पुरुष या आत्माके लिए चरकने 'अव्यक्त' शब्दका प्रयोग किया है। शङ्कराचार्यने अव्यक्तसे परमात्माकी अव्याकृत मायाशक्तिको ग्रहण किया है।[2] मायाशक्ति परमेश्वरसे अभिन्न है, इसलिए चरकने एक कदम और आगे बढ़कर शक्ति और

---

१. खादीनि बुद्धिरव्यक्तमहङ्कारस्तथाष्टमः।
भूतप्रकृतिरुद्दिष्टा विकाराश्चैव षोडश॥
बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्च कर्मेन्द्रियाणि च।
समनस्काश्च पञ्चार्था विकारा इति सञ्ज्ञिताः॥
इति क्षेत्रं समुद्दिष्टं सर्वमव्यक्तवर्जितम्।
अव्यक्तमस्य क्षेत्रस्य क्षेत्रज्ञमृषयो विदुः॥ (शारीर० १.६३-६५)

२. न व्यक्तम् अव्यक्तम् अव्याकृतम् ईश्वरशक्तिः
'मम माया दुरत्यया' इत्युक्तम्। (गीताभाष्य १३.५)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शक्तिमान्‌में अभेद दृष्टि रखकर चेतन पुरुषके लिए ही अव्यक्त शब्दका प्रयोग किया है।

गीतामें अव्यक्तसे अव्याकृत मूलप्रकृतिको ग्रहणकर तथा उसमें महदादि तेईस और इच्छा-द्वेष, सुख-दुःख, संघात-चेतना तथा धृति—इन क्षेत्रधर्मोंको सम्मिलितकर क्षेत्रकी व्याख्या की गयी है।[1] वहाँपर इन सबके संघातरूप स्थूलशरीरको क्षेत्र तथा इस शरीरको जाननेवाले परमात्माको क्षेत्रज्ञ कहा गया है।[2] स्थावर-जङ्गम समस्त भूतसमुदायकी सृष्टिका हेतु क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका संयोग बताया गया है,[3] तथा क्षेत्र-क्षेत्रज्ञका सम्यग् ज्ञान तत्त्वज्ञानरूप होनेके कारण मोक्षकारक है, ऐसा कहकर इस प्रकरणका उपसंहार किया गया है।[4]

गीता तथा चरकके क्षेत्रविषयक सिद्धान्तमें केवल अव्यक्तको लेकर मतभेद है। गीतामें उसे मूलप्रकृति या अव्याकृत मायाशक्तिके रूपमें ग्रहण करके क्षेत्रके अन्तर्गत गिनाया गया है, किन्तु चरकसंहितामें प्रकृतिव्यतिरिक्त उदासीन पुरुषको अव्यक्तत्वरूप साधर्म्यके कारण अव्यक्त प्रकृतिमें ही प्रक्षिप्त करके अव्यक्त शब्दसे ग्रहण किया गया है।[5] इसीलिए अव्यक्तको यहाँपर क्षेत्रज्ञ कहा गया है। वस्तुतः क्षेत्रज्ञके स्वरूप-निर्धारणके लिए प्रयुक्त पदावलीमें भेद होनेपर भी दोनों ग्रन्थोंमें क्षेत्रज्ञके स्वरूपमें कोई अन्तर नहीं है। चरकने अव्यक्त आत्माको क्षेत्रज्ञ

---

१. महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः॥
इच्छाद्वेषः सुखं दुःखं सघातश्चेतनाधृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्॥ (गीता १३.५-६)

२. इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥
क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत। (१३.१-२)

३. यावत्सञ्जायते किञ्चित् सत्त्वं स्थावरजङ्गमम्।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् तद्विद्धि भरतर्षभ॥ (गीता १३.२६)

४. क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम। (गीता १३.२)
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्॥ (गीता १३.३४)

५. इह प्रकृतिव्यतिरिक्तं चोदासीनं पुरुषमव्यक्तत्वसाधर्म्यादव्यक्तायां प्रकृतावेव प्रक्षिप्य अव्यक्तशब्देनैव गृह्णाति।
(शारीरस्थाने १.१७ व्याख्यायां चक्रपाणिः)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कहा है और भगवान् वासुदेवने अपनेको अर्थात् परमात्माको क्षेत्रज्ञ कहा है।[1] अव्यक्त आत्मा और परमात्मामें किसी प्रकारका भेद नहीं है।

चरकसंहितामें क्षेत्र और क्षेत्रज्ञको लेकर एक मौलिक प्रश्न उठाया गया है। क्षेत्रज्ञ और क्षेत्र इन दोनोंमें कौन पहले हुआ? यदि क्षेत्रज्ञको पूर्वभावी मानें, तो यह बात ठीक नहीं जँचती, क्योंकि क्षेत्रज्ञ शब्द क्षेत्रसापेक्ष है। क्षेत्र ज्ञेय है, उसके अस्तित्वपर ही उसके ज्ञाता (क्षेत्रज्ञ)का अस्तित्व अवलम्बित है। क्षेत्रके न होनेपर क्षेत्रज्ञानका अभाव होनेसे क्षेत्रज्ञताकी सिद्धि नहीं हो सकती है। और इसके विपरीत यदि क्षेत्रको पूर्ववर्त्ती माना जाय, तो क्षेत्रज्ञ आत्मा अशाश्वत अर्थात् अनित्य हो जायगा।[2] इसलिए संशय होना स्वाभाविक है। अग्निवेशकी इस शङ्काका उत्तर इस प्रकार है—अनादि होनेके कारण क्षेत्रज्ञ आत्माका आदि नहीं है, और क्षेत्रोंकी प्रवाहरूप परम्परा भी अनादि है। अतः क्षेत्रज्ञ और क्षेत्रपरम्परा दोनोंके अनादि होनेके कारण 'कौन पहले हुआ' यह प्रश्न ही नहीं उठता है।[3]

इसपर एक दूसरी शङ्का उठती है। यदि क्षेत्रपरम्परा अनादि है, तो आत्माके समान उसका भी विनाश नहीं होना चाहिए, क्योंकि जो अनादि है, वह नित्य है, जैसे आत्मा। यदि क्षेत्रपरम्परा भी आत्माके समान नित्य है, तो कभी मोक्ष नहीं हो सकता है। इसका समाधान इस प्रकार समझना चाहिए—यद्यपि आत्मा और क्षेत्रज्ञपरम्परा दोनों ही अनादि हैं, तथापि नित्यता केवल आत्मामें ही है। तत्त्वसाक्षात्कारसे मोक्ष होनेपर क्षेत्रपरम्परा निवृत्त हो जाती है। अतः अनादि होनेपर भी क्षेत्रपरम्परा सान्त होनेके कारण नित्य नहीं हो सकती है। अनादिता भी केवल क्षेत्रपरम्पराकी है, क्षेत्रगत बुद्ध्यादिकी नहीं, क्योंकि बुद्ध्यादि उत्पत्तिविनाशधर्मा हैं। वस्तुतः क्षेत्रके अनित्य होनेके कारण क्षेत्रपरम्परा भी अनित्य है, क्योंकि सन्तान सन्तानियोंसे

---

१. अव्यक्तमात्मा क्षेत्रज्ञः शाश्वतो विभुरव्ययः। (शारीरस्थान १.६१)
वदन्त्यात्मानमात्मज्ञा क्षेत्रज्ञं साक्षिणं तथा। (शारीरस्थान १.५)
क्षेत्रज्ञञ्चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत। (गीता १३.२)

२. क्षेत्रज्ञः क्षेत्रमथवा किं पूर्वमिति संशयः।
ज्ञेयं क्षेत्रं विना पूर्वं क्षेत्रज्ञो हि न युज्यते॥
क्षेत्रं च यदि पूर्वं स्यात्क्षेत्रज्ञः स्यादशाश्वतः॥ (शारीरस्थान १.८-९)

३. आदिर्नास्त्यात्मनः क्षेत्रपारम्पर्यमनादिकम्।
अनादित्वात्तयोरस्मात् किं पूर्वमिति नोच्यते॥ (शारीरस्थान १.८२)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अभिन्न होती है। जब व्यष्टिभूत क्षेत्र उच्छित्तिधर्मा हैं, तो क्षेत्रसन्तानपरम्परा भी उच्छित्तिधर्मा ही सिद्ध होती है। इसलिए उसकी अनादिता भी आत्माके समान मुख्य न होकर भाक्त है। मोक्षका प्रतिपादन करनेवाले आगम क्षेत्र-परम्पराके उच्छेदमें प्रमाण हैं।

गीतामें प्रकृति और पुरुष इन दोनोंको अनादि कहा गया है।[1] प्रकृतिसे बुद्ध्यादिसंघातरूप क्षेत्रपरम्परा तथा पुरुषसे क्षेत्रज्ञ आत्मा उपलक्षित होता है।

• ईश्वर

यथा स्वेनात्मनात्मानं सर्वः सर्वासु योनिषु।
प्राणैस्तन्त्रयते प्राणी न ह्यन्योऽस्त्यस्य तन्त्रकः॥
(शारीर० १.७७)

चक्रपाणिने इस श्लोककी व्याख्या करते हुए लिखा है—'यह प्राणी स्वयं ही अपने धर्माधर्मकी सहायतासे अपनेको सभी योनियोंमें ले जाता है, किसी दूसरेसे प्रेरित होकर नहीं जाता है, क्योंकि कोई दूसरा पुरुष इसका प्रेरक नहीं है, और ईश्वरका अस्तित्व नहीं है। अथवा यदि ईश्वर है, तो वह भी कर्मपराधीन है।'[2] उनका यह कथन अविचारित प्रतीत होता है, क्योंकि चरकमुनिको न तो ईश्वरका अभाव अभिप्रेत है, और न उसका कर्म-पराधीन होना।

एक योनिसे दूसरी योनिमें गमन करनेवाला जो जीव या पुरुष है, चरक-मुनिने ब्रह्मको उसका अन्तरात्मा कहा है।[3] अनेक धातुओंके संघातरूप पुरुषमें जो चैतन्यस्वरूप शुद्ध आत्मतत्त्व है, उसीको कहींपर ब्रह्म, कहींपर आत्मा, और कहीं परमात्मा कहा गया है। परमात्मा परमेश्वर ईश्वर और ब्रह्म समानार्थक हैं। यही वह तत्त्व है जिसे उपनिषदोंमें सम्पूर्ण विश्वका अधिष्ठान मूलकारण और स्रष्टा कहा गया है। उपनिषत्प्रतिपादित यह तत्त्व चरकमुनिको सर्वथा मान्य है। स्रष्टा परमेश्वरके रूपमें ही उन्होंने आत्माका प्रतिपादन किया है। देखिये—'प्रलयके समाप्त होनेपर अक्षरभूत आत्मा भूतविषयक सर्जनेच्छासे

1. प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि (गीता १३.१९)
2. आत्मनैवायं धर्माधर्मसहायेनात्मानं सर्वयोनिषु नयति, न परप्रेरितो याति, यतोऽन्यः पुरुषोऽस्य प्रेरको नास्ति, ईश्वराभावात्। किंवा, सत्यपि ईश्वरे तस्यापि कर्मपराधीनत्वात्।
3. (तस्य पुरुषस्य) ब्रह्मान्तरात्मा। (शारीरस्थान ५.५)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

युक्त होकर मन की सहायतासे सबसे पहले आकाशकी सृष्टि करता है, उसके अनन्तर क्रमशः अधिक व्यक्त गुणोंवाली वायु इत्यादि चार धातुओंको उत्पन्न करता है।'[1] अक्षरभूत परमात्माकी इस सिसृक्षाको उपनिषदोंमें ईक्षण या कामना कहा गया है।[2] तथा आत्मासे आकाशादिकी उत्पत्ति भी इसी क्रमसे बतायी गयी है।[3]

चरकके अनुसार पुरुषका अन्तरात्मा ब्रह्म है, और उपनिषदोंमें ब्रह्मसे ही समस्त भूतवर्गकी उत्पत्ति, उसीमें स्थिति, और उसीमें विलय बताया गया है।[4] अतः भूतोंकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारणभूत ब्रह्मका प्रतिपादन करनेपर भी चरकको निरीश्वरवादी कहना किसी प्रकार युक्तिसङ्गत नहीं है। चरकमुनि ब्रह्मवादी हैं, तथा पौराणिक मान्यताएँ भी प्रतीकात्मक रूपमें उन्हें स्वीकार्य हैं।

पुरुष और लोकके साधर्म्यका प्रतिपादन करते हुए चरकने कहा है कि लोकमें जितने मूर्तिमान् भावविशेष हैं, उतने ही पुरुषमें हैं। तथा पुरुषमें जितने भावविशेष हैं, उतने ही लोकमें हैं।[5] इसके अनन्तर उन्होंने लोकमें ब्राह्मी विभूतिका और पुरुषमें आन्तरात्मिकी विभूतिका समानान्तर वर्णन किया है— 'जिस प्रकार लोकमें ब्रह्म (परमेश्वर)की विभूति (ऐश्वर्य) है, उसी प्रकार पुरुषमें भी आन्तरात्मिकी विभूति है। जैसे लोकमें ब्रह्मकी विभूति प्रजापति है, उसी प्रकार पुरुषमें अन्तरात्माकी विभूति सत्त्व (मन) है। लोकमें जो इन्द्र है, वह पुरुषमें अहङ्कार है। लोकमें जो आदित्य है, वह पुरुषमें आदान (रसशोषण शक्ति) है। लोकमें जो रुद्र है, वह पुरुषमें रोष है। लोकमें जो सोम (चन्द्रमा) है, वह पुरुषमें प्रसाद (प्रसन्नता) है। वसुगण सुख हैं, अश्विनीकुमार कान्ति

१. द्रष्टव्यम् (शारीरस्थान ४.८)
२. तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति (छान्दोग्य० ६.२.३)
स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति (ऐतरेय० १.१.१)
स ईक्षाञ्चक्रे (प्रश्न० ६.३)
सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति (तैत्तिरीय० २.६)
३. तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः, आकाशाद्वायुः वायोरग्निः, अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी (तैत्तिरीय० २.१)
४. यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्विजिज्ञासस्व, तद् ब्रह्मेति (तैत्तिरीय० ३.१.१)
५. यावन्तो हि लोके मूर्तिमन्तो भावविशेषास्तावन्तः पुरुषे, यावन्तः पुरुषे तावन्तो लोके। (शारीरस्थान ५.३)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हैं, मरुद्गण उत्साह हैं, विश्वेदेव सब इन्द्रियाँ और उनके विषय हैं, अन्धकार मोह है, प्रकाश ज्ञान है। जैसे लोकमें सर्गका प्रारम्भ है, वैसे ही पुरुषका गर्भाधान है। जैसे लोकमें सत्ययुग है, वैसे ही पुरुषका बचपन है, त्रेता यौवन है, द्वापर बुढ़ापा है, कलियुग बीमारी है, और युगान्त मृत्यु है।"[1]

विभूति ऐश्वर्यका पर्याय है। ईश्वरके धर्मोंको ऐश्वर्य कहा जाता है। सारा लोक जिसकी विभूतिके रूपमें वर्णित हुआ है, उस परमेश्वरके अस्तित्वमें शङ्का करना युक्तियुक्त नहीं है। आश्चर्यकी बात तो यह है कि इस प्रकरणमें चक्रपाणि भी अपने पूर्वोक्त कथनके विरुद्ध **ब्राह्मीति आत्मविशेषस्य जगत्स्रष्टुर्विभूतिः** कहकर जगत्स्रष्टा परमेश्वरका अस्तित्व स्वीकार कर लेते हैं। चरकसंहितामें अनेक स्थलोंपर भगवान्, परमेश्वर, विष्णु, सहस्रशीर्षा, चराचरपति, कृष्ण, वासुदेव तथा विश्वकर्मादि शब्दोंका प्रयोग प्राप्त होनेसे ग्रन्थकारकी ईश्वरके अस्तित्वमें आस्था सुस्पष्ट व्यक्त होती है।[2]

तिस्रैषणीयमें परनिर्माणवादियोंका खण्डन करते हुए कहा गया है—"अनादि चेतनाधातुरूप आत्माका किसी अन्यके द्वारा निर्मित किया जाना सम्भव नहीं है, किन्तु परनिर्मितिसे यदि परमात्माका प्रपञ्चहेतुत्व अभिप्रेत हो, तो हमें भी परनिर्मिति अभीष्ट है।"[3] इससे सिद्ध होता है कि चरकमुनि औपनिषद सिद्धान्तका अनुसरण करते हुए पर आत्माको विश्वप्रपञ्चका कारण मानते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक स्थलोंपर इस आत्माको हेतु, निमित्त, कारण, कर्त्ता, धाता, प्रयोक्ता, ब्रह्मा, विश्वकर्मा, प्रजापति और सर्वशरीरभृत् इत्यादि कहा गया है। यह आत्मा ही ईश्वर या ब्रह्म है।

न्याय-वैशेषिक साङ्ख्य-योग तथा पाशुपत दर्शनमें ईश्वरका जो स्वरूप स्वीकार किया गया है, वह चरकमुनिको अभीष्ट नहीं है। इन दर्शनोंमें ईश्वरको प्रकृति तथा पुरुषवर्ग या पशुवर्गसे भिन्न और तटस्थ माना गया है, जब कि प्रस्तुत ग्रन्थमें ब्रह्म या आत्माको जीवका अन्तरात्मा माना गया है, और अव्यक्त प्रकृतिको भी पुरुषसे अभिन्न मानकर पुरुषके लिए अव्यक्त शब्दका प्रयोग किया गया है। सम्भवतः चरकसंहितामें वैशेषिक तथा साङ्ख्यदर्शनकी प्रचुरता

---

१. द्रष्टव्यम् (शारीरस्थान ५.५)

२. द्रष्टव्यम्—सूत्रस्थान १२.८; निदानस्थान १.४० तथा ८.१५; शारीरस्थान २.३२, ३.१४ तथा ४.८; चिकित्सास्थान ३.३११ तथा २३.९१-९३।

३. द्रष्टव्यम्—सूत्रस्थान ११.१३।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होनेके कारण चक्रपाणिको पूर्वोक्त भ्रान्ति हुई होगी। तटस्थ ईश्वरका प्रतिपादन न करनेके कारण उन्होंने साङ्ख्यके समान चरकको भी निरीश्वरवादी समझ लिया होगा। पुरुष और प्रकृतिसे अभिन्न अद्वैत परमात्मतत्त्वकी ओर उनकी दृष्टि क्यों नहीं गयी, यह बात समझमें नहीं आती है। सम्भवतः वे ईश्वर शब्दकी तलाशमें रहे होंगे, जो चरकमें कहीं प्रयुक्त नहीं हुआ है।

रही ईश्वरके कर्मपराधीन होनेकी बात, सो ईश्वरको कर्मपराधीन मानना दर्शनशास्त्रविषयक घोर अज्ञानका परिचायक है, क्योंकि उस स्थितिमें ईश्वरकी ईश्वरता और सर्वशक्तिमत्ता नहीं रह जायगी। जो पराधीन है, वह ईश्वर कैसा ? यह बात लोकविरुद्ध और शास्त्रविरुद्ध है। किन्तु तटस्थेश्वरवादमें कर्म-पराधीनताका दोष अपरिहार्य है, क्योंकि यदि ईश्वरको कर्मपराधीन नहीं माना जायगा, तो उसमें कर्म-निरपेक्ष होकर हीन, मध्यम और उत्तम प्राणियोंकी सृष्टि करनेसे हमलोगोंके समान राग-द्वेषादि दोषोंकी प्रसक्ति होगी, और ईश्वरका ईश्वरत्व नष्ट हो जायगा। यदि उसे कर्मापेक्षया सृष्टिकर्त्ता माना जाय, तो कर्म और ईश्वरके परस्पर प्रवर्त्तक और प्रवर्त्य होनेसे अन्योन्याश्रय दोष होगा। अतः तटस्थेश्वरवादमें अनेक दोष होनेके कारण ग्रन्थकारने उसे हेय समझकर श्रुति-स्मृतिप्रतिपादित ब्रह्मवादका आश्रय ग्रहण किया है। ब्रह्मवादमें प्राणियोंका ब्रह्म-से अभेद होनेके कारण, तथा संसारके अनादि होनेसे सृष्टि और कर्ममें बीजा-ङ्कुरके समान कार्यकारणभाव होनेके कारण पूर्वोक्त दोषोंके लिए अवकाश नहीं है।

त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः (वेद)
कोई-कोई सत्पुरुष केवल त्याग के द्वारा ही अमृतजीवन प्राप्त करते हैं।

With Best
Compliments From

A WELL
WISHER

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कालीय-दमन लीला

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी महाराज

एक पर्वतका नाम है कलिन्द। कलिन्द माने जो कलियुगके दोषोंको मिटावे। कलह न होने दे। पर्वतमें दृढ़ता तो स्वाभाविक ही होती है। समत्व और दृढ़तापर ज्ञान-सूर्यका प्रकाश हुआ। ज्ञान, समता एवं दृढ़ताके संयोगसे भगवती कालिन्दी प्रकट हुईं। कालिन्दी भगवान्‌की नित्य-प्रेयसी हैं। व्रज-लीला एवं द्वारिका-लीला दोनोंमें उनकी समान स्थिति है। व्रज-लीलामें श्रीकृष्णके ध्यानमें मग्न होकर श्यामवर्ण हो गयीं, मन्द-मन्थर गतिसे नृत्य करती रहती हैं तथा वृन्दावन-विहारी भगवान् श्रीकृष्णकी लीलामें सहयोगिनी हैं। प्रयागमें गङ्गासे एक होकर समुद्रमें प्रवेश करती हैं, एकाकी नहीं। वही पातिव्रत्यके अनुकूल है, और द्वारिकामें पहुँच जाती हैं। वहाँ श्रीकृष्णकी चतुर्थ पटरानी हैं। जैसे प्राचीन आचार्योंने गङ्गाको ब्रह्मद्रव कहा है वैसे ही रसिकाचार्योंने श्रीमती कालिन्दीको गोलोकके नित्य-विहारमें तन्मय श्रीराधाकृष्ण युगलकिशोरका विलास-स्वेद माना है। श्रीमद्-भागवतमें कहा गया है कि कालिन्दी-पुलिनके दर्शनसे श्रीकृष्णके हृदयमें उत्तम-प्रीतिका उदय हुआ। निश्चय ही श्रीकालिन्दीमें उत्तम-प्रेमकी उद्दीपन-सामग्री वर्तमान है; अन्यथा प्रेम-स्वरूप श्रीकृष्णके प्रेममय हृदयको भी उद्दीप्त करनेका सामर्थ्य कहाँसे आता? जब हम इस दृष्टिकोणसे देखते हैं तब स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् श्रीकृष्ण कालिन्दी-तटपर जाते समय अपने ज्येष्ठ भ्राता बलराम-जीको साथ क्यों नहीं ले गये?

ययौ राममृते राजन् (श्रीमद्भा० १०-१५-४७)

महाराष्ट्रके नासिक-निवासी भक्त कवि श्रीहरिसूरिने लिखा है कि जब वे एक दिन भजनमें बैठे हुए थे भगवान् उनके सामने प्रकट हुए और बोले—'पण्डितजी! आप मेरी लीलापर कुछ लिखिये।' श्रीहरिसूरिने विनम्र होकर निवेदन किया—'आपकी लीलाका रहस्य सहस्रमुख शेष भी वर्णन नहीं कर सकते, मैं भला क्या करूँगा?' भगवान् बोले—'तुम लिखो तो सही, अपने

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हृदयमें जो-जो भाव रखकर मैंने लीलाएँ की हैं वे स्वयं तुम्हारी बुद्धिमें प्रकट हो जायेंगी।' भगवान्की यही आज्ञा शिरोधार्य करके श्रीहरिसूरिने भगवान्की लीलापर सहस्राधिक उत्प्रेक्षाएँ लिखी हैं। पाँच सहस्र श्लोकोंका भक्ति-रसायन ग्रन्थ संस्कृत भाषामें उपलब्ध है। बलरामजीको साथ न ले जानेपर उनकी सूक्ति देखिये—

रामसृते इति (श्रीमद्भा० १०.१५.४७)

अस्मिन्नहन्येष नीतो यदि सह विपिनं गोपवद्गारिपश्चेद्-
योगो भ्रश्यत्प्रयोगो मम भुवि भविता यस्तदुज्जीवनार्थः।
जीर्णं तद्वा न पीतं यदि तदपि तदन्वेषणे बद्धकक्षो-
भूयात्कुर्याच्च सद्योऽमृतमयमुदकं यामुनं शिक्षिताहिः॥
(श्रीभक्तिरसायनम् १५.६३)

गोगोपजीवनमथाऽहिनिरासपूर्वं यद्यामुनाम्बुविमलीकरणं च कार्यम्।
सङ्कल्पितं भुवि मयात दिदं न सिद्ध्येदित्यच्युतो वनमगात्स विनैव रामम्॥
(१५.६४)

'श्रीकृष्णने विचार किया, मैंने संकल्प किया है कि गाय एवं गोपोंको स्व-दृष्टिसे अमृत-वृष्टि करके मैं जीवित करूँगा। कालिय नागको यहाँसे भगा दूँगा। जमुना-जलको निर्मल कर दूँगा। यदि मैं बलरामजीको अपने साथ लेकर जाऊँगा तो मैं इनमें-से कोई लीला न कर सकूँगा। मेरा विष-नाशक-योग भ्रष्ट-प्रयोग हो जायेगा। बलरामजीके साथ रहनेपर वे विषैला जल पीयेंगे ही नहीं, या पीयेंगे तो उन्हें पच जायेगा। बलरामजी कालिय नागको ढूँढ निकालेंगे, उसको दण्ड दे देंगे और यमुना-जलको अमृतमय बना लेंगे। अतः आज उनको गोचारणमें साथ न ले जाना ही उचित है।'

श्रीकृष्णने मनमें सोचा मेरे भाई बलरामजी भुजङ्गेश हैं। (संस्कृत भाषामें 'भुजंग' माने सर्प होता है और जार भी होता है। बलरामजी उनके स्वामी हैं।) अहंकार और प्रकृति दोनोंसे ऐसा ही है। इस भुजङ्गाधम कालिय नागको सबक सिखानेके लिए मैं अकेला ही पर्याप्त हूँ, माई साहबकी कोई आवश्यकता नहीं है। अतएव अकेले गये।

---

१. 'श्रीभक्तिरसायनम्', प्रपा-संस्कृत टीका सहित सत्साहित्य-प्रकाशन ट्रस्ट, विपुल, २८/१६, बी० जी० खेर मार्ग, बम्बई–४००००६ द्वारा प्रकाशित है। मू० १५'०० रु० में प्राप्त है।—सम्पादक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अहंकृत्या प्रकृत्याऽयं भुजङ्गेशो मदग्रजः।
भुजङ्गाधमशिक्षायामहमेको - ऽलमित्यगात् ॥
(श्रीभक्तिरसायनम् १५.६५)

श्रीहरिसूरिजी कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण अपने बड़े भाईके सामने अपना प्रेयसी कालिन्दीके हार्द्र-रस अथवा जलमें प्रवेश करके अन्तरङ्ग-केलि कैसे करते ? अतएव वे भुजंग-भोगको विमल करनेके लिए बिना रामके ही कालिन्दी तटपर गये।

स्वप्रेयसीहार्दरसान्तरङ्गकेलिं न कुर्याद् गुरुसन्निधाने।
भुजङ्गभोगं विमलञ्चिकीर्षुर्ययौ विना राममितीव कृष्णः॥
(श्रीभक्तिरसायनम् १५.६६)

श्रीकृष्णने अपने मनमें यह विचार किया बलरामजी शेषावतार हैं यदि उनके मनमें निजजन कालिय-नागकी रक्षाको इच्छा उदय हो गयी तो इस अशेष-जलदूषक दुष्ट सर्पको किसी प्रकार दण्ड नहीं दिया जा सकेगा। यह सोचकर ही मानो श्रीकृष्ण कालिय-मर्दनके दिन बलरामजीको छोड़कर अत्यन्त रुचिके साथ वनमें चले गये। क्यों न हो, वे सबके प्यारे, सुहृत् और गोकुलानन्द-दायी जो हैं।

रामः शेषावतारो यदि स निजजन-त्राणजाताभिलाष-
स्तन्न स्यादस्य दण्डः कथमपि दुरहेर्दूषिताशेषवारः।
इत्यालोच्येव मन्ये प्रभुरखलसुहृद् गोकुलानन्ददायी
हित्वा रामं जगामाधिकरुचिविपिनं कालियोन्मर्दनेऽह्नि ॥
(श्रीभक्तिरसायनम् १५.६७)

श्रीकृष्णके बुद्धिमें एक राजनीतिक विचार उदय हुआ। यदि अपना शत्रु अपने मित्रका मित्र हो तो अपने मित्रके सामने उसका दमन नहीं करना चाहिए। कालियनाग है और बलराम नागेश है। उनके सामने कालियनागका दमन नहीं करना चाहिए—प्रभो! ऐसा जान पड़ता है कि यही सोचकर उस दिन आप अकेले-अकेले गोचारणके लिए गये थे—

स्वशत्रुर्यदि स्वीयमित्रानुयोगी
तदा तत्समक्षं न शिक्षा विधेया।
प्रभो लोकनीतिं विभाव्यैव यातो
भवानेक एवाऽह्नि तत्रेति युक्तम् ॥
(श्रीभक्तिरसायनम् १५.६८)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गोचारणके लिए वनगमनके समय ग्वालबालोंमें श्रीकृष्णने घोषणा की, आज अशेष गोपबालक गोधन-पादनके लिए वनमें चलेंगे। बलरामने यह घोषणा सुनी तो विचार किया कि मैं अशेष नहीं शेष हूँ। अतएव आज मुझे वनमें नहीं जाना चाहिए।

अद्याशेषा वयमिह यास्यामो गोधनानि पालयितुम्।
इत्यच्युतस्य वचनं श्रृण्वन् प्रायोऽवसद् गृहे रामः॥

(श्रीभक्ति रसायनम् १५ ६९)

श्रीमद्भागवतमें कहा गया कि प्यासके कारण गायें एवं गोपोंने यमुनाका कालिय विष-दूषित जल पी लिया। इसपर श्रीहरि सूरि कहते हैं कि अज्ञताकी सीमा गोप और गाय हैं। विज्ञताकी सीमा स्वयं भगवान् हैं। विष-दुष्ट जलका पान करके गोपोंने अज्ञताकी सीमा प्रकट कर दी और श्रीकृष्णने उसे न पीकर विज्ञताकी सीमा प्रकट कर दी, क्योंकि प्यास तो दोनोंको समान ही लगी थी।

जलं पपुरिति (श्रीमद्भा० १०.१५.४८)

आगोप-माबुध-मिहाज्ञ-सुविज्ञ-सीमे
ख्याते तयोर्विशदभाव-मनायि पूर्वा।
गोपैः प्रपीतविषदुष्टजलैः परा तु
श्रीशेन यत्तृडुदयो निखिलेषु तुल्यः॥

(श्रीभक्तिरसायनम् १५-७०)

श्रीकृष्णने देखा गाय और ग्वालबाल यह विष-दूषित जल पीकर मर चुके हैं। उन्होंने दयासे द्रवित होकर अमृतवर्षिणी दृष्टिसे देखकर उन्हें जीवित कर दिया। श्रीकृष्णने अपने मनमें यह बिचार किया कि यही संसारकी दशा है। लोग जानते हैं कि यह संसार-नदी विषमय जलसे भरपूर है और इसमें कालरूपी कालियनाग प्रतिक्षण लोगोंको निगलता रहता है। मनुष्य यह भी देखता है कि उस विष जलमें डुबकी लगानेसे मृत्यु हो जाती है, फिर भी लोग मोह-वश उससे आसक्ति करते हैं और उसका भोग करते हैं। निश्चय ही ऐसे लोग भी जब मेरे चरणोंकी शरणमें आजाते हैं तब मैं उन्हें जीवन-दान देता हूँ। भगवान् श्रीकृष्णने अपनी इस लीलाके द्वारा यही दो रहस्य प्रकट किये। अतएव उन्होंने विष-जलपानसे उन्हें रोका नहीं और तत्क्षण अपनी दया-दृष्टिसे उन्हें जीवनदान भी दे दिया।

समजीवयदिति (श्रीमद्भा० १०.१५ ५०)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जानन्तोऽपि भवापगां विषजलां जाग्रत्कृतान्तोरगां
पश्यतोऽपि तदङ्गसङ्गविगतप्राणानपि प्राणिनः।
तत्संसक्त धियो भवन्ति च पुनर्मोहात्तथा तद्भुज-
स्तादृक्षा अपि ये मदङ्घ्रिशरणास्तान् जीवयाम्यन्वहम् ॥
एतद्द्वयं जगति सूचयताऽच्युतेन
गो गोपजातकृत तद्विषवारि पानम् ।
नैव न्यषेध्यथ च तत्क्षण एव तेषा-
मुज्जीवनं सदयया विहितं स्वदृष्ट्या ॥
(श्रीभक्तिरसायनम् ७१-७२)

उचित यह था कि गाप और गायोंको विषैला जल पीनेसे भगवान् रोक देते। अपना आत्मीय जन कोई गलत काम करने जा रहा हो तो उसे रोक देनेमें ही औचित्य है। परन्तु भगवान्ने उन्हें रोका क्यों नहीं ? इसपर श्रीहरि सूरि कहते हैं कि यह कर्तव्य उसी मनुष्यका है जो उस कर्मके फलको रोक सकनेमें समर्थ न हो। भगवान् श्रीकृष्ण अचिन्त्य चरित और अकुण्ठ शक्ति हैं। यही कारण है कि इनका अनिष्ट नहीं होने देंगे यह निश्चय करके भगवान् चुप-चाप देखते रहे।

स एव मनुजो निजान् भृशमनिष्टदात्कर्मणो
निवारयति यस्तदुत्थित-फलोपशान्त्यक्षमः।
अचिन्त्यचरितस्त्वयं प्रभुरकुण्ठशक्तिस्तदा
यदा स परमोचितं तदपि वीक्ष्य तूष्णीं स्थितः ॥
(श्रीभक्तिरसायनम् १५.७३)

चतुर्भुज रूपमें प्रकट होनेपर मथुरामें देवकी माताने स्तुति की थी कि तुम्हारे भक्तको देखकर मृत्यु भाग जाती है। जान पड़ता है कि अपनी माताका वचन सत्य प्रमाणित करनेके लिए प्रभुने गाय एवं गोपालोंको जीवित कर दिया। सच-मुच श्रीकृष्ण भक्त-कल्याणकारी हैं।

यस्त्वद्भक्तो मृत्युरस्मादपैतीत्येतत्सत्यं मातृवाक्यं विधास्यन्।
गो-गोपालोज्जीवनं तत्प्रमाणं स्पष्टं चक्रे भक्तकल्याणकर्ता ॥
(श्रीभक्तिर० १५.७४)

श्रीकृष्णने अपनी लीलासे यह स्पष्ट कर दिया कि यदि तृष्णाकुल (प्यासे या लोभी) और गायों अथवा इन्द्रियोंके पोषणमें समासक्त प्राणी भी मेरे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चरणोंके शरणागत हों तो उन्हें अवश्य निरन्तर रक्षाका विषय बनाता रहता हूँ, जीवनदान करता हूँ, इसमें कोई सन्देह नहीं।

बहुतृषोऽपि गवावनतत्परा अपि मदङ्घ्रिरता यदितानहम्।
अविरतं वनतो बत जीवयाम्यकृत तत्कृतितः स्फुटमच्युतः॥
(श्रीभक्तिरसायनम् १५.७५)

गोविन्द-दृष्टिकी अमृत-वृष्टिसे जो परिप्लुत हैं, मैं विष विष-रूप नहीं रहता, उससे विपरीत रूपवाला अमृत हो जाता हूँ। मेरे नाम विषमेंसे 'ष' का लोप हो जाता है मैं विशेष हो जाता हूँ। मानों विष स्वयं अपने नामकी व्याख्या करके तत्क्षण नष्टवीर्य हो गया; यद्यपि वह अत्यन्त प्रबल था।

गोविन्ददृष्टच-मृतवृष्टि-परिप्लुताना-
मग्रेऽहमस्मि भुवनेषु विरूपमेव।
कुर्वन् स्वनामविशदं विषमेवमासीद्
गोपेष्वसह्यमपि तत्क्षणनष्टवीर्यम्॥
(श्रीभक्तिरसायनम् १५.७६)

यदि मनुष्यके ऊपर गोविन्दकी पूर्ण करुणा हो तो मनुष्यके लिए दुर्विषय-रूप विषसे भी भय नहीं रहता। इसमें यह प्रमाण है कि गाय और गोप पहलेसे भी अधिक तेजस्वी हो गये।

गोविन्दपूर्णकरुणा यदि तत्र कस्मा-
दप्यत्र दुर्विषयतोऽपि विषाद्भयं स्यात्।
स्पष्टं तु मानमिदमेव यदत्र गोपा-
स्तेजस्विनः समभवन् भुवि पूर्वतोऽपि॥
(श्रीभक्तिरसायनम् १५.७७)

गायें एवं गोपोंकी क्षणभर भी उपेक्षा न करके जो प्रभुने उनके संजीवनकी लीला की, वह स्नेहवात्सल्यकी भी अभिव्यक्ति है। इसी प्रसंगसे भगवान्‌की दृष्टि यमुनाजीके उस विषैले ह्रदपर पड़ी जिसमें कालिय नाग रहता था। जिसके कारण यमुनाजीका अमृतमय जल विषमय हो रहा था। कृष्णने देखा—यमुना मेरी पत्नी 'कृष्णा' है। इसमें कृष्ण-सर्पने निवास कर रखा है। अब उसको यहाँसे निकाल देना मेरा कर्तव्य है। पत्नीका दुःख दूर करना पतिका ही परम कर्तव्य होता है।

(सावशेष)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्री वेदान्तदेशिक

डॉ० वि. कृष्णस्वामी अय्यंगार

रीडर : केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा—५

भारत माताने असंख्य महर्षियों तथा आचार्योंको जन्म दिया है। ज्ञान-विज्ञानके क्षेत्रमें इन महर्षियों तथा आचार्योंका योगदान अमूल्य रहा है। वेद, वेदान्त, शास्त्र, पुराण, इतिहास आदि हमारी समस्त साहित्यिक सम्पत्ति इन्हीं महापुरुषोंकी देन है। इन्हींके सतत परिश्रमसे भारतकी महान् संस्कृतिका निर्माण हुआ। ऐसे महापुरुषोंके बारेमें जानना, उनके आदर्शोंका तथा जीवन-साधनाका परिचय प्राप्त करना हमारा कर्तव्य है। इस छोटे-से लेखमें हमारे देशके एक महान् मनीषी श्री वेदान्तदेशिकका संक्षिप्त परिचय देनेका प्रयास किया गया है।

श्री वेदान्तदेशिकका जन्म १२६८ ई० सन्‌में हुआ। ये तमिलनाडुके कांचीपुरम्‌के पास 'तूप्पुल्' नामक एक गाँवमें पैदा हुए। इनके पिताका नाम अनन्त सूरि; तोतारम्बा माताका नाम था। पुंडरीकाक्ष यज्वा इनके पितामह थे। इस प्रकार तमिलनाडुके एक प्रसिद्ध वैष्णव परिवारमें आजसे सात सौ साल पहले इस महान् आचार्यका जन्म हुआ। पिताने इनका नाम 'वेंकटेश' रक्खा था। कई ग्रन्थोंमें वेदान्तदेशिकने इस नामका उल्लेख किया है। किन्तु परवर्ती कालमें ये 'वेदान्तदेशिक'के नामसे ही विख्यात हुए। इन्होंने रामानुजाचार्यके विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तका खूब प्रचार किया। प्रतिपक्षियोंके तर्कोंका खण्डन करके विशिष्टाद्वैतका समर्थन किया। कई विद्वद्गोष्ठियोंमें शास्त्रार्थ करके रामानुजके मतका प्रतिपादन किया। वेदान्तके निरूपण, समर्थन, प्रचार और प्रसारमें इनका योगदान इतना महत्त्वपूर्ण था कि श्रद्धालु लोगोंने इन्हें 'वेदान्तदेशिक' की उपाधिसे विभूषित किया। श्री वैष्णव-संप्रदायमें इनको सिर्फ 'देशिक' के नामसे जानते हैं।

देशिकके मामा आत्रेय रामानुजा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चार्य बड़े विद्वान् थे। वे वरद गुरु नामके महान् आचार्यके शिष्य थे। कहा जाता है कि जब देशिक सिर्फ पाँच सालके छोटे बालक थे तब एक बार मामा इनको अपने आचार्यकी शास्त्र-गोष्ठीमें ले गये। वहाँ देशिकने अपनी असाधारण प्रतिभाका परिचय दिया। इनकी प्रतिभाको देखकर वरद गुरु प्रसन्न हो गये और निम्नलिखित छंदमें इन्हें अमोघ आशीर्वाद दिया :

प्रतिष्ठापितवेदान्तः
प्रतिक्षिप्तबहिर्मतः ।
भूयास्त्रैविद्यमान्यस्त्वं
भूरिकल्याणभाजनम् ॥

आशीर्वादका भाव था कि तुम वेदान्त-सिद्धान्तकी स्थापना करो, वेद-बाह्य मतोंका खण्डन करो और अनन्त कल्याणके पात्र बनो। वेदान्तदेशिकका जीवन इस बातका साक्षी है कि वरद गुरुका यह आशीर्वाद पूर्ण रूपसे सार्थक हुआ।

मामाने ही देशिकको शिक्षा-दीक्षा दी। देशिकने बीस वर्षोंके अंदर ही सभी विद्याओंमें प्रवीणता प्राप्त की। देशिकके पुत्र नयिनाराचार्यने लिखा है—

रामानुजार्यादात्रेयान्
मातुलात्सकलाः कलाः ।
अवाप विंशत्यब्दे य-
स्तस्मै प्राज्ञाय मंगलम् ॥

देशिकने तर्क, व्याकरण, मीमांसा, वेदान्त आदि अनेक शास्त्रोंमें असाधारण विद्वत्ता प्राप्त की। इसी कारण आपको 'सर्वतन्त्रस्वतन्त्र'की उपाधि मिली। आपकी प्रतिभा काव्य तथा शास्त्र दोनोंके क्षेत्रमें समान रूपसे अव्याहत गतिसे काम करती थी। विद्वानोंने आपको "कवितार्किकसिंह" कहकर आपकी सर्वतोमुखी प्रतिभाका आदर किया। आपके पुत्रने दोनों विरुदोंका उल्लेख करते हुए लिखा है :

सर्वतन्त्रस्वतन्त्राय
सिंहाय कविवादिनाम् ।
वेदान्ताचार्यवर्याय
वेंकटेशाय मंगलम् ॥

वेदान्तदेशिकने संस्कृत और तमिलमें सैकड़ों ग्रन्थोंकी रचना की है। रामानुजाचार्यने विशिष्टाद्वैतके दृष्टिकोण-से ब्रह्मसूत्रोंकी व्याख्या की; उनके भाष्यको 'श्री भाष्य' कहते हैं। सुदर्शन भट्ट नामके आचार्यने श्री भाष्यपर एक टीका लिखी है, जिसे 'श्रुतप्रकाशिका' कहते हैं। देशिकने श्रुतप्रकाशिका ग्रन्थकी रक्षा की। 'श्रीरंगम्' पर मुसल-मानोंका आक्रमण हुआ था; तब सुदर्शन भट्टके दोनों पुत्रोंके साथ उनके इस ग्रन्थकी भी रक्षा करके देशिकने श्रीवैष्णव धर्मका बड़ा उपकार किया। स्वयं भी उन्होंने श्रीभाष्यपर टीका लिखी। इसके अलावा 'अधिकरण सारावली' आदि ग्रन्थोंके द्वारा उन्होंने श्रीभाष्यके गूढ तात्पर्यको प्रकट किया। रामानुजाचार्यके गीता - भाष्यपर 'तात्पर्य-चन्द्रिका' नामक एक विस्तृत टीका लिखकर गीताके तात्पर्यका प्रका-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यन किया। 'न्याय-परिशुद्धि' तथा 'न्याय-सिद्धाञ्जन'' नामक ग्रन्थोंमें न्यायका अपनी विशिष्ट दृष्टिसे प्रतिपादन किया। विशिष्टाद्वैतकी स्थापना तथा प्रतिपक्षोंके खण्डनके लिए 'शतदूषणी' के नामसे एक अत्यन्त प्रौढ़ वाद-ग्रन्थका निर्माण किया। इन ग्रंथोंमें देशिककी शास्त्रीय प्रतिभाके चमत्कार देख सकते हैं।

देशिकने तमिलमें कई मौलिक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। इन्हें "देशिक प्रबन्धम्" कहते हैं। सरल किन्तु अर्थ गर्भित भाषामें देशिकने रामानुजीय सिद्धान्तका निरूपण किया है। तमिलमें संस्कृत शब्दावलीको यथेष्ट मात्रामें मिलानेपर उस मिश्रित शैलीको 'मणिप्रवाल' कहते हैं। इस मणिप्रवाल शैलीमें भी देशिकने कई ग्रन्थ लिखे हैं। विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त या श्रीवैष्णव सम्प्रदायके कुछ विशिष्ट या असाधारण 'तत्त्व' हैं, जिन्हें रहस्य कहा जाता है। इन रहस्योंका उद्घाटन करनेवाले कई 'रहस्य-ग्रन्थ' देशिकने मणिप्रवाल शैलीमें लिखे हैं। इममें सर्वश्रेष्ठ तथा महत्त्वपूर्ण कृति है 'रहस्यत्रयसार''। इस ग्रन्थको विशिष्टाद्वैत सिद्धान्तकी दीपिका कह सकते हैं।

शास्त्र ग्रन्थोंके बाद काव्यके क्षेत्रमें देशिकके योगदानकी चर्चा करना उचित होगा। आपने एक बोधप्रद नाटक लिखा है, जिसका नाम है 'संकल्प सूर्योदय'। कृष्ण मिश्रने अद्वैत सिद्धान्तके प्रचारके लिए 'प्रबोध-चन्द्रोदय' नामक नाटक लिखा था। उसीके आदर्शपर देशिकने विशिष्टाद्वैतके प्रचारके लिए यह नाटक लिखा। इस नाटककी प्रस्तावनामें उन्होंने स्वयं कहा है कि तिरुपतिके वेंकटेश्वरके घण्टाने ही मेरे रूपमें अवतार लेकर रामानुजके विचारोंका प्रचार किया :

उत्प्रेक्ष्यते बुधजनैरुपपत्तिभूम्ना घण्टा हरेः समजनिष्ट यदात्मनेति।

देशिकके पुत्रने तो लिखा है कि कुछ लोग इन्हें वेंकटेश्वरका ही अवतार मानते हैं, तो कुछ लोग घण्टावतारके रूपमें स्वीकार करते हैं। कुछ तो कहते हैं कि रामानुजने ही अपने सिद्धान्तका प्रचार करनेके लिए देशिकके रूपमें पुनः अवतार लिया। उनके शब्द हैं :

वेंकटेशावतारोऽयं
तद्घण्टांशोऽथवा भवेत्।
यतीन्द्रांशोऽथवेत्येवं
वितर्क्यायास्तु मंगलम्॥
श्रीभाष्यकारः पन्थान-
मात्मना दर्शितं पुनः।
उद्धर्तुमागतोनून
मि-त्युक्तायास्तु मंगलम्॥

इन शब्दोंसे स्पष्ट है कि विद्वानोंने देशिककी असामान्य प्रतिभाको देखकर ऐसी उत्प्रेक्षाएँकी थीं कि शायद ये स्वयं भगवान् वेंकटेश्वरके अवतार हैं, या उनके घण्टाके अवतार हैं या फिर रामानुजके अवतार हैं। ये केवल

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उत्प्रेक्षाएँ हैं, अतः इनमें परस्पर विरोध नहीं हो सकता। संकल्प-सूर्योदय एक रमणीय नाटक है। कई बार रंगमञ्च-पर इसका प्रयोग भी किया जा चुका है।

कालिदासने रघुवंश महाकाव्यमें श्रीरामके पूर्वजोंका चरित विस्तारसे बताकर श्रीरामकी कथाको संक्षेपमें पाँच सर्गोंमें समाप्त किया। फिर श्रीरामके वंशमें उत्पन्न अर्वाचीन राजाओंका भी वर्णन किया है। देशिकने सोचा कि भगवान्‌के अवतार-की कथाको विस्तारसे बताना ही उचित है। उन्होंने भागवतके आधार-पर श्रीकृष्ण-कथामृतको एक महा-काव्यके रूपमें प्रस्तुत किया। इस महाकाव्यका नाम है 'यादवाभ्युदयः'। चौबीस सर्गोंके इस महाकाव्यमें कृष्णके चरित्रका अद्भुत वर्णन मिलता है। देशिकने इस महाकाव्यमें अपनी कवि-प्रतिभाका वैभव खूब प्रदर्शित किया है। रस, अलंकार, गुण, रीति आदिकी दृष्टिसे यादवाभ्युदयको संस्कृतके सर्वो-त्तम महाकाव्योंमें स्थान दिया जा सकता है। ऐसे सुन्दर काव्यकी रचना करनेपर भी देशिकने विनयसे कहा है कि व्यास और वाल्मीकि दो ही कवि कहलाने योग्य हैं; उनके सामने यदि कोई तीसरा अपनेको कवि मानता है तो यह उसकी निर्लज्ज धृष्टता ही है :

वसुधाश्रोत्रजे तस्मिन्
व्यासे च हृदयस्थिते।
अन्येऽपि कवयः कामं
बभूवुरनपत्रपाः॥

भारवि और माघके समान देशिकने भी यादवाभ्युदयके षष्ठ सर्गमें एकाक्षर, सर्वतोभद्र, गतप्रत्यागत आदि दुष्कर चित्रबन्धोंकी रचना की है। इन शब्दा-लंकारोंके द्वारा भाषापर अपने अबाधित अधिकारका प्रमाण दिया है। किंतु शब्द-चमत्कारके साथ-साथ अर्थसौन्दर्य-का भी निर्वाह किया है। एक बातका यहाँ विशेष रूपसे उल्लेख करना चाहिए। देशिकके इस काव्यपर अप्पय्य दीक्षितने टीका लिखी है। अप्पय्य दीक्षित अद्वैतके अनुयायी थे। फिर भी मतद्वेष तथा असूयाको दूर रखकर दीक्षितजीने देशिकके काव्यपर टीका लिखी। देशिक तो विशिष्टाद्वैता थे; उनके काव्यमें प्रत्यक्ष या परोक्ष-रूपसे विशिष्टाद्वैतके तत्त्वोंकी चर्चा आयी है। ऐसे प्रसंगोंमें भी दीक्षित-जीने प्रामाणिकतासे देशिकके विचारों-की व्याख्या की। कहीं भी खण्डनात्मक प्रवृत्तिको नहीं अपनाया। मूलका भाव स्पष्ट करना ही टीकाकारका कर्तव्य है। मूलके विचार यदि स्वीकार्य नहीं हैं तो उनका खण्डन करनेके लिए स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखना चाहिए। दीक्षित-जी अद्वैतके अत्यन्त समर्थ आचार्य थे; फिर भी यादवाभ्युदयकी टीकामें उन्होंने प्रामाणिकतासे टीकाकारके धर्मका पालन किया है। यह उनकी वैचारिक उदारताका प्रमाण है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वेदान्तदेशिकने कालिदासके मेघदूतके समान 'हंस-सन्देश' के नामसे एक लघुकाव्य लिखा है। इसमें राम सीताके पास एक हंसके द्वारा सन्देश भेजते हैं। दो सर्गोंके इस खण्डकाव्यमें दक्षिणके तीर्थस्थानोंका सुन्दर वर्णन किया गया है। 'सुभाषित नीवी' में देशिककी सूक्तियोंका संकलन किया गया है। 'श्रीरंगम्' दक्षिण भारतका एक प्रमुख यात्रास्थल है। यहाँ कावेरी नदीकी दो धाराओंके बीच भगवान् श्रीरंगनाथजीका प्रसिद्ध मंदिर है। देशिकने अपने जीवनके कई वर्ष श्रीरंगनाथकी सेवामें विताये थे। उन्होंने रंगनाथकी पादुकाओंके प्रभावपर एक सुन्दर कृति लिखी है। इस ग्रन्थमें एक हजार पद्य हैं; अतः इसको 'पादुकासहस्र' कहते हैं। ऐसे कई छोटे-मोटे काव्यग्रन्थोंका निर्माण करके देशिकने काव्यके माध्यमसे भी धर्मका प्रचार किया।

अन्तमें देशिकके स्तोत्रसाहित्यपर दो शब्द कहना आवश्यक है। देशिकजी कवि थे, तार्किक थे, वेदान्ती थे, बहुत बड़े विद्वान् और आचार्य थे। किंतु सबसे बढ़कर वे एक भक्त थे। दक्षिणके विविध मन्दिरोंमें प्रतिष्ठित भगवान्की अर्चा मूर्तियोंके प्रति उनकी गहरी आस्था थी। कांची, तिरुपति, श्रीरंगम् आदि प्रसिद्ध तीर्थस्थानोंमें कई वर्षोंतक उन्होंने वास किया था। ऐसे पवित्र स्थानोंको श्री वैष्णव-सम्प्रदायमें 'दिव्य-देश' या 'तिरुपति' कहते हैं। ऐसे एक सौ आठ दिव्य देशोंकी सूची तैयार की गयी है। आलवारों तथा आचार्योंने इन दिव्य देशोंको यात्रा करके भगवान्की महिमाका वर्णन किया। देशिकने भी इसी परम्पराका अनुसरण करके कई स्तोत्र लिखे। वरदराज-पञ्चाशत्, वेगासेतुस्तोत्र, अष्टभुजाष्टक आदि स्तोत्र ऐसे ही हैं। काञ्चीके हस्तिगिरिपर प्रतिष्ठित नारायणकी मूर्ति वरदराजकी स्तुति पचास छन्दोंमें की गयी; यही 'वरदराजपंचाशत्' है। तिरुपतिके बालाजी श्रीनिवासकी दयाका वर्णन देशिकजीने एक सौ पद्योंमें किया; इस स्तोत्रका नाम है 'दयाशतक'। श्रीरंगम्पर मुसलमानोंका आक्रमण हुआ; वहाँकी जनतामें भगदड़ मच गयी। तब देशिकने भगवान्से 'अभयकी प्रार्थना करते हुए एक स्तोत्र लिखा। इसे 'अभीतिस्तव' कहते हैं। इसके बाद गोपण्णा नामक एक स्थानीय शासकने मुसलमानोंको हटाकर श्रीरंगम्की रक्षा की। यह ऐतिहासिक घटना है। इस प्रकार देशिककी प्रार्थना सफल हुई।

विष्णुके कई अवतार हुए हैं, कई रूपशास्त्र और पुराणमें वर्णित हैं। देशिकने 'हयग्रीव-स्तोत्र' 'गोपाल-विंशति' 'रघुवीरगद्य' आदि स्तोत्रोंमें भगवान्के नाना रूपोंका वर्णन करके भक्तिपूर्ण स्तवन किया है। उनका स्तोत्रसाहित्य भक्तोंके लिए अमृतवर्षी पर्जन्य है; पथको आलोकित करनेवाला प्रकाश-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्तम्भ है; तथा पारमार्थिक ज्ञानका भी अक्षय भंडार है। इस प्रकारके सैंकड़ों ग्रन्थोंसे तत्त्वज्ञानकी दीपिकाएँ जलाने-वाले श्रीवेदान्तदेशिकका नाम श्रीवैष्णव सम्प्रदायके इतिहासमें सदाके लिए अमर रहेगा।

इसके बदलेमें कुछ मागना नहीं

दो भाई थे। बड़ा भाई ईश्वर-भक्त था। सन्तोंका आदर करता। लेकिन छोटा भूलसे भी कभी भगवान्‌का नाम नहीं लेता। एक दिन बड़े भाईके घर एक लंगड़े महात्मा पधारे थे। बड़े भाईने अपने छोटे भाईको बात बताकर उसके कल्याणके लिए उन महात्मासे प्रार्थना की।

महात्मा छोटे भाईको जमीनपर पटककर उसके छातीपर चढ बैठे और उसे 'नारायण' नाम लेनेका आग्रह करने लगे।

प्राण जानेपर भी मैं नारायणका नाम ही लूँगा इतने शब्द उसके मुँहसे निकलते हि उन महात्माने उसे छोड़ा और कहा, 'बस-बस! अभी तुमने जो 'नारायण'का नाम लिया है, उसके बदलेमें कुछ मागना नहीं।'

मृत्युके बाद यमराजने छोटे भाईको एक समयके 'नारायण'-नामके बदलेमें स्वर्ग, अमृत, कल्पवृक्ष, कामधेनु—कुछ भी माँग लेनेकी इजाजत दी, लेकिन उस भाईको महात्माके शब्द याद थे। वह बदलेमें मांगता नहीं था।

आखिरमें इसको नामके बदले क्या मिले, इस समस्यासे यमराज, ब्रह्माजी तथा शंकरजी उस भाईको कन्धेपर उठाकर श्रीनारायणके पास ले गये और सारी कहानी सुनायी। श्रीनारायणने उसे गलेसे लगाया और हँसकर कहा, 'इसे नामके बदले जो मिलना था, वह मिल गया है।'

—(म० श्री०) य० ब० क्षीरसागर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कबीरकी रमैनी

डॉ० उर्वशी जें० सूरती

रीडर : हिन्दी विभाग, महिला विश्वविद्यालय : बम्बई

(सावशेष)

'एक लक्ष रमणी'को सती पतिव्रता स्त्रीके अर्थमें घटित किया जा सकता है। भक्त और भगवान्‌का सर्वोत्कृष्ट सम्बन्ध कान्ताभावमें है, क्योंकि इस संसारमें इससे बढ़कर अन्य कोई सम्बन्ध अभेद भावकी पूर्णताको व्यंजित नहीं कर सकता। ज्ञानी भक्तकी दृष्टि मायापर नहीं, परमात्मापर ही ठहरती है। उसका मन मायाके विविध विलासोंमें उलझकर प्रपंचमें नहीं फँसता, परन्तु उसे मायाके सब रूप अपने परमप्रिय-का प्राकट्य ही जान पड़ता है।

× × ×

पूर्ण ब्रह्मके लिए 'राम' संज्ञाका प्रयोग करके जगत्‌को रामकी लीला बताया है। इस संदर्भमें यदि 'रमणी' शब्दकी व्याख्या की जाय तो कहना होगा कि यह जगत् लीला-पुरुषोत्तम रामका रमण है और माया रामकी स्वरूपशक्ति अर्थात् चित्‌शक्ति रमणी है। यह रमणी रामकी स्वरूपभूता होनेसे नामरूपके विविध विलास करते हुए भी उसका राममें 'एकलक्ष' होना स्वभाविक है।

इस प्रकार कबीरकी 'रमैनी'का सूक्ष्मतासे अध्ययनकर उसका रहस्य खोजा जाय तो 'रमणीय'के अर्थमें 'रमैनी'को स्वीकार किया जा सकता सकता है। 'रामायणा'की ध्वनि इसमें मानी जाय तो भी आश्चर्य नही है। रामभक्तके लिए यह शब्द-प्रयोग आपत्तिजनक नहीं है। मायाके लिए 'रमा' या 'रामा' शब्द माना जाय तो डॉ० वर्माके मतका प्रति-पादन हो जाय, परन्तु 'रमैनी'का एक अर्थ है राम-रहस्यका उद्‌घाटन। जो सर्वत्र रम रहा है वह राम और उसकी लीला अथवा रामलीलाका गान माने 'रमैनी'। रामकी ओर एन अर्थात् इशारा-संकेत करनेवाली वाणी—रामके लिए रम, इशाराका इ या एन और वाणीका णी या ई—इस प्रकारकी व्युत्पत्ति यदि कोई भाषा-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शास्त्री खोज ले तो कोई आश्चर्य नहीं। रमैनी शब्द सर्वप्रथम किस अर्थमें प्रयुक्त हुआ यह जाननेके बाद कबसे प्रयोग होने लगा, इसका अनुसन्धान करनेपर मालूम पड़ता है कि कबीरसे ही उसका प्रारम्भ हुआ है।

'रमैनी'का तात्पर्य—रमैनी संख्या ५१ में कबीरजीने कहा है—

जाकर नाम अकहुआ रे भाई।
ताकर काह रमैनी गाई॥
कहेक तातपर्ज है ऐसा।
पंथी बोहित चढ़िके जैसा॥
है कछु रहनि गहनिकी बाता।
बैठा रहै चला पुनि जाता॥
रहै बदन नहि स्वांग सुभाऊ।
मन अस्थिर नहिं बोले काऊ॥
तन रहित मन जात है,
मन रहित तन जाय।
तन मन एकै ह्वै रहैं,
तब हंस कबीर कहाय॥

कबीरने रमैनीका तात्पर्य मंगलाचरण या प्रस्तावनाके रूपमें नहीं दिया है। संख्या ५० तक अपने भाव प्रकट करनेपर वे सोचते हैं कि मैं क्यों रमैनी गा रहा हूं? अपने ही मनका मानो समाधान करते हुए उन्होंने उपर्युक्त पंक्तियाँ कही हैं। इससे रमैनीका तात्पर्य स्पष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त 'रमैनी' शब्दका अर्थ भी व्यंजित होता है। उनका कहना है—'जिसका नाम नहीं कहा जा सकता अर्थात् जो अनाम और अरूप है उसकी रमैनी क्यों गायें? अर्थात् उसकी लीला कैसे गायें? फिर भी कबीरजी कुछ तो कह रहे हैं, इसलिए वे अपना उद्देश्य स्पष्ट करते हैं। उन्होंने विभिन्न स्तरके अधिकारियोंको लक्ष्यमें रखकर विभिन्न प्रकारसे साधना और परमात्मतत्त्वका निरूपण किया है।' इसी कारण कुछ मूलभूत बातें सबमें समान हैं परन्तु कथन-शैलीमें अन्तर है। यहाँ वे कहते हैं—जैसा पंथी होता है वैसा उसे वाहन चाहिए अर्थात् कोई पैदल चलना पसन्द करता है तो कोई बैलगाड़ी, घोड़ा, हाथीपर सवार होना। यह अपनी व्यक्तिगत रहन-सहन और करनी-कथनीकी बात है। परन्तु एक बात निश्चित है कि जो जिस साधनको लेकर परमात्म-पथपर चलता है, एक दिन उसके साधनका अन्त होता है, परमात्म-प्राप्ति होते ही उसका साधन छूट जाता है। साध्य मुख्य है, साधन गौण। जैसे गन्तव्यपर पहुँचनेके बाद व्यक्ति वाहनपरसे उतर जाता है, यह जीवन उसी प्रकार सोद्देश्य धारण किया हुआ स्वांग है और कार्य भी उस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए है। नटकी तरह अभिनय पूरा हो गया तो स्वांग और कार्य वहीं समाप्त हो जाते हैं, वह स्वयं ज्यों-का-त्यों मूल रूपमें बना रहता है।

इस संसारमें आकर जीवको मनुष्यके चोलेमें जो भी कार्य करने हैं,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वे सब उसके मनकी स्थिरताके लिए हैं। तन और मनकी संयुक्त रचना ऐसी है कि एकके बिना दूसरा नहीं रह सकता। इसलिए जब-जब अपने शरीरको भूल जाता है, तन-मन दोनों एक हो जाते हैं तब उसे आत्मा-अनात्माके विवेकसे आत्मज्ञान होता है। फिर उसे कुछ पाना बाकी नहीं रहता, अनुसन्धानके नामपर कबीरकी रचना-के रूपमें संदिग्ध बतायी जानेवाली 'बीजक'में संगृहीत 'रमैनी' कबीरकी विचारधाराका पूर्ण प्रतिनिधित्व करती है। इसके अन्तर्गत विचार-णीय विषय हैं :—(१) रामरहस्य (२) रामनामोच्चार (३) माया : जीवात्मा, अहंता, कर्म, पाण्डित्य, धर्माडम्बर, वीरता, (४) अज्ञानता : संशय, भ्रम, काम, लोभ और मोह, पाप, (५) दुःख, भेदबुद्धि, वर्णभेद, वाह्याचार, (६) मौत : चेतावनी, उल्टबाँसी (७) गुरु : गुरु-शरणागति, गुरुकृपा, (८) तत्त्वविचार, ब्रह्म-ज्ञान, ब्रह्मज्ञानी, प्रेम और— (९) सत्संग, संत। (१०) कबीरका ज्ञानोपदेश, परमात्मा : विद्यासे परे, कर्मसे परे : ब्रह्म : अद्वितीय, निर्गुण, निराकार; परमात्माकी अनिर्वचनीयता; सिद्धि; ब्रह्मानुभव; अनन्यता। अन्तमें उपसंहारके साथ कबीरके शब्दोंमें बीजककी व्याख्याका निर्देश है।

(१) रामरहस्य—रामरहस्यमें रामनामकी महिमा, 'राम'का परि-पूर्ण परब्रह्मके अर्थमें प्रयोग, राम-स्मरण आदिपर कबीरने अपने विचार व्यक्त किये हैं। मूढ़-मति लोगोंको लक्ष्यकर वे कहते हैं :—

रामहुँ केर मरम नही जाना,
ले मति ठानिन्हि वेद पुराना।
वेदहु केर कहल नहि करई,
जरतहि रहे सुस्त नहि परई ॥६॥

रमैनी चौंतीसमें यही भाव है। कथावाचकको वे, 'लवाड' कहते हैं। लवाड वह है जो झूठ बोलता है। यहाँ 'झूठ' से तात्पर्य है मनसा-वाचा-कर्मणामें एकताका अभाव। इस एकतामें केन्द्रविन्दु है आदर्श-चरित्र। मनुष्यकी बुद्धिमें वेद-पुराण भरे हैं परन्तु उसने रामका रहस्य तो जाना नहीं। वेदकी आज्ञाका पालन न करनेके कारण वह द्वन्द्व-ग्रस्त है। उसके हृदयमें दिन-रात राग-द्वेष, ईर्ष्या असूयाकी जलन है। वासना-विकारसे उसका चित्त मलिन है। संसारसे वह उदासीन नहीं, व्यवहारमें उलझा हुआ है। यदि मनुष्यका चित्त गुणा-तीतके गानमें रमा रहे तो उसका अहं छूट जाय, पंचभूतसे प्राप्त व्यक्ति-भाव निवृत्त हो जाय, मिट्टीमें मिट्टी और पवनमें पवन मिल जाय अर्थात् तात्त्विक एकता हो जाय।

२. रामनामोच्चार—तात्त्विक एकताके लिए रामनामका उच्चारण चाहिए। यह कबीरका स्वानुभव है—

दास कबीर राम कहि छूटा।(३३)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संसारके लोग जीभसे रामका नाम लेते हैं परन्तु हृदय उसमें तन्मय नहीं होता। ऐसा नामोच्चारण गधेकी तरह कोरा श्रम है। नाम लेते-लेते उनकी जीभपर छाले भले पड़ जायँ, यह भक्ति या प्रेम नहीं, मूर्खता है। इससे दुःख कम न हुआ, और भी बढ़ गया। ऐसी भावुकता छोड़कर वह निरभिमानी होकर गुरुकी बतायी युक्तिसे साध्यको सरलतासे प्राप्त कर सकता है। मनुष्य अभिमानवश सरल मार्ग ग्रहण नहीं करता, अपने ही अभिमानका शिकार बना हुआ वह अपने व्यक्तित्वकी पूजा करना चाहता है। अनायास पानी सम्मुख मिलनेपर भी 'खुद कुआँ खोद पानी निकालेंगे तब पियेंगे' ऐसी मनोवृत्तिवाला मनुष्य, सन्तोंने जिस मार्गपर चलकर परमात्माका अनुभव किया है और संसारके दुःखोंसे मुक्ति पायी है उसपर चलनेको तैयार नहीं है। विनम्र भावसे शिष्य बनकर—लघु होकर गुरुकी शरण ग्रहण करनेमें उनके अहं पर चोट लगती है। तब उनके भाग्यमें कोरा कर्म-श्रम ही रहेगा। कबीरने इस स्थितिकी संगति देते हुए कहा हैं—'वेदपुत्री 'स्मृति' कर्म-काण्डकी रस्सी लेकर आयी तब मनुष्यने उसका स्वागतकर खुद अपनेको कर्मजालमें उलझा दिया। इच्छाके दास वे विषयभोग पानेके लिए कर्मकाण्डका मार्ग अपनाने लगे।' उनको न प्रेमजन्य आनन्द मिलेगा न ज्ञानजन्य शान्ति।

कबीरजीके हृदयमें अतिशय करुणा है। वे वत्सलतापूर्वक कहते हैं—

अब कहु राम नाम अविनासी।
हरि छोड़ि जियरा कतहुँ न जासी॥

(२०)

जब तक मन है, इच्छावृत्तिका विकार सतायेगा। इच्छाके अनन्त भवसागरमें रामनाम ही नौका है। उसीके आश्रयमें सुरक्षा सम्भव है। यदि तू उसकी शरण ग्रहण करेगा तो गोवत्सके खुरसे बने छोटे भूछिद्रको लाँघने जैसा अनायास इस भवसागर-को पार कर जायगा। इसलिए हे जीव! अब तू अविनाशी हरिका नामस्मरण कर। उसे छोड़ अन्यत्र कहीं मत भटक। तेरी आदत ऐसी बुरी है कि जहाँ जाता है वहाँ पतंग अर्थात् वासनाका शिकार बन अपना नाश करता है। अब समझ ले, तेरे लिए संसारके आकर्षण विषतुल्य हैं। तू उनमें जलकर अपनेको भस्म मत कर। यदि तू तेरे मनमें रामनामकी लौ लगावेगा तो भृङ्गीकीटकी तरह तू स्वयंको 'राम' अनुभव करेगा। यह संसार दुःखके बोझसे बोझिल है। तू जो कुछ देखता है उससे चेत और अपनी रक्षा कर। जैसे सागरमें उठनेवाली लहरें पानीका ही विकार हैं, तत्त्वतः पानी है परन्तु वे सागरके ओर-छोरको नहीं देख पातीं, उठ-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उठकर पुनः वहीं विलीन हो जाती हैं। वैसे मनमें उठनेवाली वृत्तियाँ तत्त्वतः आत्मस्वरूपका प्रकाशन होनेसे अनन्त संसार-सागरके ओरछोरको नहीं देख पातीं। दुःखका कारण मन और उसकी वृत्तियाँ सब तत्त्वतः आत्म-स्वरूप होनेपर भी वासनाकी प्रधानतासे केवल संसार है। दुःखसे छुटकारा पानेका एकमात्र उपाय है रामस्मरण—

सुमिरन करहु रामकै,
छोड़हु दुःखकी आस।
तर ऊपर धै चापि है,
जस कोल्हू कोटि पचत्तस॥१७॥

संसारी मनोवृत्तिवाला व्यक्ति रामनामसे वैर करता है और दुःखसे छूटना चाहता है। यह असंगत है। स्थिति ऐसी है कि वह राम-स्मरण करनेपर दुःखसे छूटता है: अन्यथा वह दुःख भोगते हुए भी कहीं विश्राम या आश्रय तो नहीं पाता, उल्टे अनेक यन्त्रणाओंका शिकार हो जाता है।

बहुत दुःख है दुःखकी खानी।
तब बंचिहौ जब रार्मांह जानी॥
रार्मांह जानि जुक्ति जो चलहै।
जुक्तिहिं ते फंदा नहिं परई॥२१॥

दुःखसे उद्धारका एक ही मार्ग है रामको जानना। रामका ज्ञान मायासे बचनेकी युक्ति सुझाता है और रामका नाम-स्मरण ही उसका ज्ञान कराता है। मनुष्यने सम्पत्तिके मदमें विवेक खो दिया और अमृतके धोखेमें विष खा लिया। अतः वह संसारमें चाहे सब विद्या और कलामें पारंगत हो जाय, रामनामकी महिमा न जानी तो उसका जीवन व्यर्थ हो जाता है। संसारमें ऐसे ही लोग ज्यादा हैं। वे जीवनका सच्चा अर्थ नहीं जानते। इस शरीरका जीना-मरना वे अपना जीना-मरना समझते हैं ओर शरीरकी सुरक्षाके लिए हजार उपाय करते हैं। जो वैद्य दूसरे मरते व्यक्तिको संजीवनी बूटी पिलाकर जीवनदान करनेमें समर्थ है, वह भी मौतसे नहीं बच सकता, क्योंकि शरीर तो प्रकृतिसे अनित्य है, इसलिए असत्य है। नित्य तो रामनाम ही है, इसलिए वही सत्य है, उसे पकड़ो और विवेक-वैराग्यपूर्वक असत्यका त्याग करो। यहाँपर कबीरजीका व्यंग्य देखने लायक है—

ते नर कहंवा चलि गये,
जिन दीन्हा गुट घोंटि।
रामनाम नितु जानिकै,
छोंडहु वस्तु खोंटि॥३६॥
नियम, धरम, संयम सब सौदा है,
सिर मूंडने से काम न चलेगा।
कहें कबीर ते उबरे,
जो निसवासर नार्मांह लेय॥६॥

दिन-रात राम-नाम लेनेवालोंका उद्धार हो गया अर्थात् वे अज्ञानसे, मोहमायासे, द्वन्द्वसे छूट गये। रामसे एक होना अर्थात् अजपाजापसे प्राप्त सिद्धि अन्तिम रूपसे अन्तर्यामीका

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बोध हैं। प्रत्येक सांस रामनामके आकारमें ढल जाती है, उसका सम्पूर्ण अस्तित्व राममय हो जाता है। यही नामकी महिमा है। इसलिए बार-बार वे कही युक्तियोंसे रामनामका उपदेश करते हैं—

रामनाम लै बेरा धारा।
सो तौ लै संसारहिं पारा॥
रामनाम अति दुर्लभ,
और हुते नहिं काम।
आदि अन्त औ जुग-जुग,
रामहिं ते संग्राम ॥७६॥

माया मोहके कारण ही संसार कठिन और दुःखद मालूम हो रहा है। वही हमारे जीवनमें फन्दा है। भवसागरको पार करनेमें रामनाम बेड़ेका काम करता है। इसका सहारा लेनेवाला तो तर जाता है और परमात्मासे मिलता है। रामनाम अत्यन्त दुर्लभको भी सुलभ बना देता है। परन्तु रामनाम सब ले नहीं सकते। उसमें प्रीति होना भी दुर्लभ है। उसके समान शक्तिशाली दूसरा कोई साधन नहीं है जो इतनी सरलतासे परमात्मासे मिला दे। इसलिए कबीर जी हमारे व्यावहारिक जीवनके साथ इस साधनाको संगत बताते हुए कहते हैं राम-रावण-संग्राम तो युगों-युगोंसे चल रहा है। यदि तुम्हें जीवनमें संघर्ष भी करना है तो आदि-मध्य-अन्तमें मात्र रामनामका स्मरण करते रहो। तुम जीत जाओगे। संघर्ष भी करो तो रामनामसे अर्थात् सारी शक्ति इस नामोच्चारणमें लगा दो।

(३) माया—भगवन्नाममें अपनी सम्पूर्ण शक्तिको केन्द्रितकर देनेवालेके पास मायाकी गति नहीं है, अन्यथा जीवभावापन्न होकर अहन्तासे लदा वह कर्म करता है, पाण्डित्य-प्रदर्शन और धर्माडम्बरमें अपने कर्तव्यकी इतिश्री समझता है। कर्तृत्वके बोधसे अपनी वीरताका आख्यान करता है। इन सब स्थितियोंका कबीरने यथासम्भव वर्णन-विवेचन किया है।

जीवात्मा—मायाका कार्य इतना उटपटांग है कि तत्त्व और मायाका विश्लेषण मुश्किल हो जाता है। कबीरने उल्टवांसीके प्रयोगसे इसका वर्णनकर उसकी वक्रताका ही परिचय दिया है। साथ-साथ जीवात्माकी स्थितिका वर्णन और तात्त्विक-निरूपण भी वे आसानीसे कर लेते हैं—

चलि जात देखी एक नारी।
तर गागरि ऊपर पनिहारी॥
चली जात वह बाटहिं बाटा।
सोवनहारके ऊपर खाटा ॥७३॥

मायाके कारण जीवात्माको ऐसी अज्ञानता हुई कि आधार-आधेयका क्रम ही उलट गया। जड़ चेतनकी जगह प्रतिष्ठित किया गया तब चेतनको जड़का स्थान लेना पड़ा। शरीरको आत्मा समझ लेना ऐसा ही है

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जैसे गागरपर पनिहारी और सोनेवालेपर खाटको रख देना। जीवपर माया सवार हो जाय तो बात उल्टी पड़ जाती हैं। वास्तवमें स्थित ही ऐसी है और उसका वर्णन करनेमें उल्टवांसी अत्यन्त सफल है।

तात्त्विक दृष्टिसे नारी माने सुरति और गागर माने शरीर। मार्गमें जाना मान षट्चक्रभेदन। इडा-पिंगलाकी खाट है, उसपर कुण्डलिनी सोई हैं। शरीरमें अध्यास हो जानेसे सुरतिका जागरण नहीं हो पाता, अतः बिना षट्चक्रभेदनके मात्र जीवन-यापन हो रहा है। कुण्डलिनि दुबकी हुई सुप्त पड़ी हैं और इडा-पिंगला भी जड़भावापन्न होनेसे बहिर्मुख हैं। इसी रमैनीमें शृङ्गारका विशिष्ट प्रयोग करके उन्होंने मायाका हूबहू परिचय दिया है—

जाडन मरै सपैदी सौरी।
खसम न चीन्हैं घरनि भौ बौरी॥
सांझ सकार दिया लै बारैं।
खसम छोंडि संवरें लगवारे॥
वाहीके रस निसु दिन राची।
पियसे बात कहै नहिं सांची॥
सोवत छोडि चली पिय अपना।
ई दुख अब दहुं कहवे कैसना॥
अपनो जांघ उघारिकै,
अपनी कही न जाय।
की चित जानै अपना,
की मेरो जन गाय॥७३॥

'सौरी' माने जीवात्मा शरीररूपी चद्दरमें लिपटा हुआ सांसारिक जड़तारूपी सर्दीके मारे ठिठुर रहा है। शरीर घर है, उसमें जीवात्मा गृहिणीके रूपमें रहता है, परन्तु वह ऐसी मूर्ख और बावली है कि उसे अपने प्रिय पतिकी पहचान नहीं है। वह अपने पतिकी उपेक्षा कर सुबह-शाम विभिन्न देवी-देवताओंकी प्रसन्नताके लिए दिया जलाती है और दिन-रात उन्हींको खुश करनेमें लगी रहती है। वह अपनी कामनापूर्तिके लिए छोटे-छोटे देवताओंका भजन करनेके बदले यदि परमात्मासे निवेदनकर दे तो उसका कल्याण हो जाये। अपनी सेजपर अपने पास सोये पतिसे वह प्रेम नहीं करती, यह कितने दुःखकी बात है। कहा भी कैसे जाय? अपनी लाज तो ढँकनी पड़ती है। उसका रहस्य खुदको ही मालूम होता है। कभी-कभी भक्त मायाके इस व्यभिचारकी निन्दा करता है और भगवत्प्रेमवश अपने प्रिय परमात्माकी महिमा गाता है। एक उल्टबांसीमें सांसारिक मनोवृत्तिपर आश्चर्य किया गया है। यह भी मायाका विचित्र विलास है—

माटीके कोट पाषानके ताला।
सोई बन सोई रखवाला॥

× × ×

मूस विलाई एक संग,
कहु कैसे रहि जाय।
अचरज एक देखहु हो संतो
हस्ती सिंघहि खाय॥१२॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मिट्टीके कोटकी रक्षाके लिए पत्थरका ताला लगाया हुआ है अर्थात् शरीर मिट्टीका है, उसकी सुरक्षाके लिए बड़े-बड़े प्रयत्न किये जा रहे हैं कि जीवात्मा कहीं चला न जाय। वास्तविकता तो ऐसी है कि एक परमात्माको छोड़कर अन्य कुछ है ही नहीं तो रक्षा किसकी कौन किसके करे? मन भी वही है। कबीरने यहाँ मनुष्यकी मूर्खता बताकर उसे हास्यास्पद बनाया है कि मिट्टीके कोटपर पत्थरका ताला लगानेसे भी क्या? ताला ज्यों-का-त्यों रह जायगा और मिट्टीका कोट पानीमें गलकर या किसी कारणसे टूट-फूटकर नष्ट हो जायगा। इसमें यह भी व्यंजित होता है कि ताला अपनी जगहपर लटका रह जायगा अर्थात् शास्त्रके भारी-भरकम उपदेश शाब्दिक ही रह जायेंगे और काम-क्रोधादि चोर, संशयादि डाकू इस मिट्टीके कोटमें सेंध लगाकर कभी भी जीवको असावधानीमें भीतर घुसकर उसे चौपट कर देंगे। यह भी मायाका खेल है।

संसारमें चूहा-बिल्ली साथमें नहीं रह सकते। एक भयभीत है तो दूसरा आक्रामक। यदि भय और हिंसा न हो तो दोनोंका साथ रहना सम्भव है। जीव चूहा है तो माया बिल्ली है। जहाँ जीवभाव है वहाँ मायासे मित्रता है। एक और आश्चर्य देखा—'हाथी सिंहको खाता है।' हाथी अभिमानका और सिंह आत्माका प्रतीक है। जीवने अभिमानवश आत्माका नाश अर्थात् विस्मरण कर दिया है।

(सावशेष)

●

महाराज मुझे राजा मत बनाइयेगा

श्रीपद्मपुराणकी कथा है। दुर्वासाजीने धर्मके साक्षात्कारके लिए उग्र तपश्चर्या की। लेकिन धर्मका दर्शन न होनेसे वे क्रोधित होकर उसे शाप देने लगे।

धर्म काँपता हुआ सामने खड़ा हुआ तो दुर्वासाजीने कहा, 'तुझे पृथ्वीपर जाकर शूद्र, चाण्डाल और राजा बनना पड़ेगा।'

धर्मने कहा, 'मैं शूद्र, चाण्डाल बनकर समाजकी सेवा कर सकूँगा। लेकिन मुझे राजा मत बनाईयेगा। 'राजापन' से मेरी अधोगति होगी। आखिर धर्मको हरिश्चन्द्रकी सत्य-परीक्षामें चाण्डाल, महाभारतमें विदुर और पाण्डवोंमें युधिष्ठिर बनना पड़ा। आजकी सत्ता-स्पर्धाकी उपलक्ष्यमें यह कथा संस्मरणीय है।

—(म० श्री०) य० ब० क्षीरसागर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तुलसीका दैन्य

श्री विष्णुकान्त शास्त्री

रीडर, कलकत्ता विश्वविद्यालय

माधव ! मो समान जग माहीं
सब विधि हीन, मलीन, दीन अति लीन-विषय कोउ नाहीं ।[1]

दैन्यकी ऐसी उक्तियाँ तुलसी-साहित्यमें प्रचुर मात्रामें मिलती हैं । तुलसीदास तथा अन्य भक्तोंकी ऐसी उक्तियोंके प्रति सैद्धान्तिक असहमति व्यक्त करनेवालोंकी संख्या कम नहीं है । ऐसे ही भावोंको व्यंजित करनेके कारण वल्लभाचार्यने सूरदासको प्रेमभरी फटकार देते हुए कहा था, 'जो सूर ह्वै के ऐसे घिघियात काहेको है, कछु भगवल्लीला वर्णन करि ।'[2] यों भी दैन्य-प्रकाशन शिष्टजनों द्वारा निन्दित एवं आत्मगौरवके प्रतिकूल कार्य माना जाता है । वैदिक ऋषिकी प्रार्थना है, 'अदीनाः स्याम शरदः शतम्'—हम सौ वर्षोंतक अदीन होकर रहें । इसी तरह महाभारतकी सुप्रसिद्ध उक्ति है, 'अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं, न पलायनम्'[4] अर्थात् अर्जुनकी दो प्रतिज्ञाएँ हैं, न दैन्य न पलायन । ऐसा नहीं है कि तुलसीदास अपनी संस्कृतिकी इस तेजस्वी परम्परासे अवगत न रहे हों और इसका समर्थन भी न करते हों । शबरीको नवधा भक्तिका उपदेश देते हुए तुलसीके राम कहते हैं, 'नवम सरल सब सन छल हीना, मम भरोस हिय हरष न दीना'[5] अर्थात् सरलता, सबके साथ निश्छलता, हृदयमें मेरा भरोसा, हर्ष और दीनताका अभाव मेरी नौवीं भक्ति है । फिर तुलसीदास क्यों बार-बार दीनता प्रकट करते हैं, क्यों कहते हैं, 'करमठ कठमलिया कहैं, ज्ञानी ज्ञान विहीन, तुलसी त्रिपथ बिहायगो राम दुआरे दीन'[6] अर्थात् भले ही कर्ममार्गी कठमलिया (तुलसीको माला फेरनेवाला) और ज्ञानी ज्ञानविहीन कहते रहें, तुलसी तो कर्म, ज्ञान और उपासना—इन तीनों पन्थोंको छोड़कर रामके द्वारपर दीन भावसे जो पड़ा हुआ है, आखिर क्यों ?

---

१. विनयपत्रिका ११४-१-२, २. अष्टछाप—सं० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० सं० ४, ३. शुक्ल यजुर्वेद-माध्यन्दिन संहिता ३६.२४, ४. महाभारत, ५. रामचरितमानस ३.३६.५, ६. दोहावली ९९ ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस गुत्थीको सुलझानेका प्रयास करनेके पहले दैन्यके सम्बन्धमें कुछ विवेचना कर लेना आवश्यक है। दैन्य (दीनका भाव या दीनता) का कोषगत अर्थ है, 'निर्धनता, गरीबी, शोक, उदासी, निर्बलता, कमीनापन'।[1] साहित्य में संचारी भावके रूपमें इसका लक्षण यह बताया गया है, "दुःखदारिद्र्यापराधादिजनितः स्वापकर्षभाषणादि-हेतुश्चित्तवृत्तिविशेषो दैन्यम्", दैन्य मनकी उस दशाका नाम है, जो दुःख-दरिद्रता या किसी भारी अपराध करनेके कारण उत्पन्न होती है और जिसके उत्पन्न होनेपर मनुष्य अपनी हीनता, निकृष्टता या अकिंचित्करताका कथन आदि करने लगता है।[2] साहित्य-दर्पणके 'दौर्गत्याद्यैरनौजस्यं दैन्यं मलिनतादिकृत्' (३.१.४५) के अनुसार दुर्गति आदिसे उत्पन्न ओजस्विताके अभावको दैन्य कहते हैं, जिससे मलिनता आदि उत्पन्न होती है। दैन्यको अर्थ-परिधिका विस्तार व्यावहारिक एवं साहित्यिक क्षेत्रोंको लाँघकर साधनाके क्षेत्रमें भी जा पहुँचा है। शरणागतिके छह अंगोंमें छठा अंग कार्पण्य या दैन्य बताया गया है। अनुकूलताका संकल्प, प्रतिकूलता वर्जन, रक्षाका विश्वास, गोप्ता (रक्षक)के रूपमें वरण, आत्मनिक्षेप (आत्मसमर्पण) के साथ-ही-साथ कार्पण्य या दैन्यके द्वारा ही शरणागतिकी पूर्णता होती है। वैष्णव शास्त्रमें कार्पण्य या दैन्यका स्वरूप निर्धारित करते हुए कहा गया है—

> त्यागो गर्वस्य कार्पण्यं श्रुतशीलादिजन्मनः।
> अंगसामग्र्यसम्पत्तेरशक्तेरपि कर्मणाम् ॥
> अधिकारस्य चासिद्धेर्देशकालगुणक्षयात्।
> उपाया नैव सिध्यन्ति ह्यपाया बहुलास्तथा ॥
> इति या गर्वहानिस्तद्दैन्यं कार्पण्यमुच्यते।[3]

अर्थात् ज्ञान, शील आदिसे उत्पन्न गर्वका त्याग कार्पण्य है। (भगवत्प्राप्तिके लिए साधनभूत) अंग सामग्रीकी असम्पत्ति (असम्पन्नता), (तदनुकूल) कर्मकी अशक्ति (असमर्थता), अधिकारकी असिद्धि एवं (उपयुक्त) देश, काल, गुणके क्षयके कारण उपाय तो सिद्ध होते ही नहीं, उल्टे बहुत-से अपाय (अनिष्ट, भय) आ जाते हैं, ऐसे अनुभवोंके कारण जो गर्व-हानि होती है, उसे दैन्य अथवा कार्पण्य कहते हैं।

---

१. संस्कृत शब्दार्थ-कौस्तुभ, पृ० ५३५, २. साहित्यदर्पणकी पं० शालिग्राम शास्त्रीकृत विमला टीका, द्वि० सं०, परिशिष्ट पृ० ३, ३. लक्ष्मी तन्त्रम्—१६.६८-७०।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्लने भक्ति-साधनाके अंगभूत दैन्यको भक्तके 'लघुत्व की अनुभूति' मानकर उसका मनोवैज्ञानिक विवेचन करते हुए लिखा है, 'प्रभुके महत्त्वके सामने होते ही भक्तके हृदयमें अपने लघुत्वका अनुभव होने लगता है। जिस प्रकार प्रभुका महत्त्व-वर्णन करनेसे आनन्द आता है, उसी प्रकार अपना लघुत्व-वर्णन करनेमें भी। प्रभुकी अनतशक्तिके प्रकाशमें उसकी असामर्थ्यका, उस-की दीनदशाका बहुत साफ चित्र दिखायी पड़ता है और वह अपने ऐसा दीन-हीन संसारमें किसीको नहीं देखता। प्रभुके अनन्त शील और पवित्रताके सामने उसे अपनेमें दोष-ही-दोष और पाप-ही-पाप दिखायी पड़ने लगते हैं। इसी हृदयके क्षोभसे आत्मशुद्धिका आयोजन आप-से-आप होता है। इस अवस्थाको प्राप्त भक्त अपने दोषों, पापों और त्रुटियोंको अत्यन्त अधिक परिमाणमें देखता है और उनका जी खोलकर वर्णन करनेमें बहुत कुछ सन्तोष लाभ करता है।'[1]

इस विवेचनसे यह स्पष्ट है कि जिस दैन्यकी भर्त्सना की जाती है, वह भौतिक दुःखके प्राप्त होनेपर आत्मगौरवको त्यागकर सामान्य जनोंके समक्ष दीन होनेका भाव है, जबकि साधनाके स्तरपर प्रभुके समक्ष दैन्य-निवेदन भक्तोंकी दृष्टिमें परम प्रशंसनीय एवं विधेय है।

तुलसीदासके दैन्यभावका विश्लेषण-विवेचन करनेके पहले दैन्यके सम्बन्धमें उनकी दृष्टिपर कुछ विचार कर लेना लाभदायक होगा। तुलसीदास दैन्यको जीव-का सहज धर्म नहीं मानते, आगन्तुक धर्म मानते हैं। जीव स्वरूपतः तो 'ईश्वर अंस जीव अविनासी चेतन, अमल, सहज सुखरासी'[2] हैं, किन्तु मायाके अधीन-हो जानेपर, जड़ और चेतनकी झूठी गाँठ पड़ जानेपर, जीव संसारी होता है और साथ-ही-साथ दुःखी भी। तुलसीने बड़ी पीड़ाके साथ यह अनुभव किया है कि हृदयमें सत् चेतन, घन आनन्द-राशि प्रभुके रहते हुए भी 'सकल जीव जग दीन, दुखारी'[3] हैं। सांसारिक स्तर पर दैन्य किसीका काम्य नहीं होता, किन्तु वह किसीको छोड़ता भी नहीं। काम, क्रोध, लोभ आदिसे ग्रस्त जीव संकट आनेपर दीन हो ही जाता है। औरोंकी बात जाने दीजिये, 'न दैन्यं, न पलायनम्' की प्रतिज्ञा करनेवाला अर्जुन भी महाभारतके समय मोहग्रस्त होकर दीन हो उठा था और उसने स्वीकार किया था 'कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः'[4] अर्थात् कार्पण्य""दैन्य रूपी दोषसे मेरा स्वभाव उपहत""विकृत हो गया है। इस दैन्यसे मुक्ति पानेके लिए उसे भी प्रभुके निकट प्रपन्न""शरणागत होना पड़ा था।

---

१. विनयपत्रिकाकी हरितोषिणी टीका (द्वि० सं०) का परिचय, पृ० ११।
२. रामचरितमानस ७.११७.२। ३. वही १.२३.७। ४. श्रीमद्भगवद्गीता २.७।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तुलसीको जगत्के जीवोंकी दीनता इतनी स्वाभाविक लगती है कि 'जस काछिय तस चाहिअ नाचा' के सिद्धान्तानुसार मानव रूपमें अवतरित होनेपर विशेष-विशेष प्रसंगोंमें श्री रामसे भी 'दीनता'का नाट्य उन्होंने करवाया है। सीता-हरणके अनन्तर ही रामकी विरह-कातरताका चित्रण करनेके बाद तुलसीदासने टिप्पणी जड़ी है, 'कामिन्ह कै दीनता देखाई, धीरन्हके मन बिरति दृढ़ाई'[1] लक्ष्मणको शक्ति लगनेपर तो तुलसीके राम विह्वल स्वरोंमें कह उठे हैं कि लक्ष्मणके विना मेरी वैसी ही करुण दीन स्थिति है, 'जथा पंख बिनु खग अति दीना, मनि बिनु फनि, करिवर करहीना'[2] जैसे पंखके विना पक्षीकी, मणिके बिना सर्पकी और सूंड़के विना गजराजकी हो जाती है। यह बात दूसरी है कि तुलसीने इसे भी 'नर गति' दिखानेकी लीला कहकर अपनी ओरसे श्री रामके 'चिदानन्दत्व' पर आँच नहीं आने दी। इसी प्रकार यह सोच-सोचकर कि मेरे कारण श्रीरामको वन जाना पड़ा; भरतकी मनोव्यथाकी सीमा नहीं रह गयी थी। माता कौशल्या, गुरु, वशिष्ठ, मंत्रीगण, पुरजन आदिके राज्य स्वीकारनेके अनुरोधकी उपेक्षाकर उन्होंने द्विधाहीन शब्दोंमें कहा था, 'आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहि सिरु नाइ। देखें विनु रघुनाथ पद जियके जरनि न जाइ'[3] यदि भगवान् श्रीराम एवं भरत जैसे भागवत भी 'दारुण दीनता' से ग्रस्त हो सकते हैं तो मानसके अन्य पात्रों या संसारके सामान्य जीवोंकी उससे मुक्ति कहाँ? निष्कर्ष यह है कि तुलसीदासकी मान्यताके अनुसार लाख नकारनेकी चेष्टा करनेपर भी दैन्यग्रस्त हो जाना मायाबद्ध जीवकी विवशता है। अतः समस्या वास्तवमें यह है कि 'दैन्य'का अनुभव होनेपर जीव क्या करे?

'जीव क्या करे' का सही निर्देश तभी दिया जा सकता है, जब इसपर विचार कर लिया जाये कि दैन्यकी स्थितिमें 'वह सामान्यतः क्या करता है' और उसके उस कार्यका क्या फल होता है। निर्धनता, संकट या अपराधके कारण दीनताका बोध करनेपर साधारण मनुष्य अपनेसे अधिक समर्थ व्यक्तिकी सहायतासे अपनेको उबारना चाहता है। बिहारीने इस स्थितिका चित्रण करते हुए कहा—

> घरु घरु डोलत दीन ह्वै, जनु जनु जांचत जाइ।
> दिये लोभ-चसमा चखनु, लघु पुनि बड़ौ लखाइ॥[4]

बिहारीके अनुसार दीन होकर जन-जनसे याचना करनेका कारण आँखोंपर

---

१. रामचरितमानस ३.२९.२। २. वही ६.६१.९। ३. वही २.१८२। ४. बिहारी रत्नाकर—१५१।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चढ़ा लोभका चश्मा है, जो क्षुद्र व्यक्तियोंको भी बड़ा बनाकर दिखाता है। तुलसीके अनुसार संसारमें बड़े-से-बड़े माने जानेवाले भी वास्तवमें दीन ही हैं। उनका अनुभव है, 'जाहि दीनता कहौं, हौं दीन देखौं सोऊ।'[1] मुनि, सुर, नर, नाग, असुर आदिकी साहबी तभीतक है, जबतक राम उनकी ओरसे आँख नहीं फेर लेते। फिर ये सब स्वार्थी हैं, दीन जनकी पीड़ाका अनुभवकर सहायता करते हों, ऐसी बात नहीं है, सहायताके नामपर अपना अहं तृप्त करते हैं या बदलेमें कुछ और बड़ा चाहते हैं। तुलसीका कटु अनुभव है कि 'जांचों जल जाहि, कहै अमिय पिआउ सो, कासों कहों काहू सों न बढ़त हिआउ सो'[2] जल माँगने पर जो पहले अमृत पिलानेकी फर्माइश करें उनसे कुछ कहनेका हियाव कैसे बढ़ सकता है। फिर भी आशा···लालसाकी ताड़नासे जीव जहाँ-तहाँ, जिस-तिसके पास दौड़ता ही फिरता है, हा-हाकर द्वार-द्वारपर बार-बार अपनी दीनता कहता है, किन्तु उसके खुले मुँहमें कोई एक मुट्ठी राखतक नहीं डालता···'कहा न कियो, कहाँ न गयो, सीस काहि न नायो'···'हा हा करि दीनता कही द्वार-द्वार बार-बार, परी न छार मुँह बायो;[3] और अगर कोई बहुत बढ़कर कुछ देता भी है, सो दमड़ी की कौड़ी बराबर देता हैं, उसके लिए कौन देश-देश क्लेश सहता और नरेशोंके आगे हाथ फैलाता फिरे, 'जांचेको नरेस, देस-देसको कलेस करे, देहे तो प्रसन्न ह्वै बड़ी बड़ाई बौड़िये।[4] फिर यह कौड़ी बराबर जो कोई देता भी है, कहाँसे देता है? तुलसीकी पक्की धारणा है कि संसारमें रामके अतिरिक्त कोई दूसरा दानी है ही नहीं, राम ही सबकी बाजी रखते हैं, 'जग जाचक दानि दुतीय नहीं तुम्ह ही सबकी सब राखत बाजी'[5] ऐसी स्थितिमें तुलसीको लगता है कि 'व्योम, रसातल, भूमि भरे नृप कूर, कुसाहिब सेंतिह खारे, तुलसी तेहि कौन मरे?'[6]···आकाश, पाताल और पृथ्वीमें भरे हुए ये निकम्मे कुस्वामी तो मुफ्तमें मिलनेपर भी बुरे हैं, उनकी सेवामें कौन मरता रहे? अतएव उनका दृढ़ संकल्प है कि 'जग जाँचिये कोउ न, जाँचिये जो जिय जाँचिये जानकी जानहि रे। जेहि जाँचत जाचकता जरि जाइ जो जारति जोर जहानहि रे'[7]। संसारमें किसीसे भी माँगना नहीं चाहिए, यदि माँगना ही हो तो श्रीरामसे ही माँगना चाहिए, जिससे याचना करनेपर अपने बलसे संसारको जलाती रहनेवाली याचकता जल जाती है। साफ है कि जिस अभाव, संकट या अपराध-बोधका तुलसीको अनुभव होता रहता है, उसे दूर करनेकी

१. विनयपत्रिका ७८.२। २. वही १८२.५-६। ३. वही २७६.१.४। ४. कवितावली ७.२५.५-६। ५. वही ७.९५.२। ६. वही ७.१२.२-३। ७. वही ७.२८.१-४।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

क्षमता संसारके किसी व्यक्तिमें नहीं है, इसका पक्का निश्चय हो जानेके कारण ही वे रामके द्वारपर 'दीन' होकर गये हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसीदासका 'दैन्य' उनकी 'हीनता ग्रन्थि'का उदात्तीकृत रूप है। सांसारिक दृष्टिसे तुलसी अभावमें ही जन्मे, पले, बढ़े, क्योंकि पैदा होते ही माता-पिताका साया उनके सिरसे हट गया था। उनका बचपन घोर अरक्षा और दरिद्रतामें बीता, उन्होंने कहा है, 'बारे तें ललात, बिललत द्वार-द्वार दीन, जानत हो चारि फल, चारि ही चनकको'[1] जो पेट भरनेके लिए मिले चनेके चार दानोंको धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके फलों सदृश समझनेके लिए बचपनमें विवश रहा हो, उसकी हीनता-ग्रन्थिकी कल्पना की जा सकती है। दैन्यके दो सबसे स्थूल भौतिक कारण अनाथता और निर्धनतासे जूझ-जूझकर ही वे बड़े हुए थे। उनके परवर्ती जीवन, चिन्तन एवं साधन-चयन-पर इन दोनोंका बड़ा गहरा प्रभाव है। भगवत्-पथके पथिक होनेके कारण उन्होंने अपने लिये धनकी याचना कभी नहीं की, किन्तु यह स्वीकारा कि भौतिक स्तरपर 'नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं'[2] और लोक-कल्याणार्थ जीविकाविहीन लोगोंका दुःख दूर करनेके लिए प्रभुसे आग्रह भरे स्वरोंमें दारिद्रयरूपी दशाननसे दुनियाको मुक्त करने की प्रार्थना की, 'दारिद-दशानन दवाई दुनी दीन बन्धु दुरित दहन देखि तुलसी हहा करी'[3] अपने लिये 'जथालाभ सन्तोष सदा काहू सो कछु न चहौंगो'[4] का आदर्श सामने रखनेवाले तुलसी 'रोटो द्वै हौं पावों'[5] से ही सन्तुष्ट थे, किन्तु 'औरोंके लिए' नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना'[6] की मंगलकामनासे प्रेरित होकर समस्त 'सुख-सम्पदा' से संयुक्त समाजकी कल्पना वे कर गये हैं।

अपनी हीनता-ग्रन्थिसे उबरनेके लिए मनुष्य जाने-अनजाने जिस प्रविधिका प्रयोग करते हैं, उसे समझाते हुए प्रख्यात मनोवैज्ञानिक डा० ऐल्फ्रेड ऐडलरने लिखा है, 'हीनता, अपर्याप्तता, अरक्षाका अनुभव ही व्यक्तिके अस्तित्वका लक्ष्य निर्धारित करता है'....प्रमुखता प्राप्त करनेके इस लक्ष्यको निर्धारित करनेमें सामाजिक भावनाकी मात्रा एवं गुणवत्ता सहायता पहुँचाती है। हम किसी व्यक्तिका मूल्यांकन चाहे वह शिशु हो या वयस्क—व्यक्तिगत प्रमुखताके उसके लक्ष्य एवं उसकी सामाजित भावनाकी प्रमात्राकी तुलना किये बिना नहीं कर सकते। उसका लक्ष्य इस प्रकार निर्मित होता है कि उसकी पूर्ति या तो श्रेष्ठत्व-

१. कवितावली ७.७३.२-२। २. रामचरितमानस ७.१२१.१३। ३. कवितावली ७.९७.७-८। ४. विनयपत्रिका १७२.३। ५. कवितावली ७.६३.२। ६. रामचरितमानस ७.२१.६।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

की भावनाको या व्यक्तित्वके उन्नयनको उस कोटितक पहुँचानेकी सम्भावनाकी प्रतिश्रुति देती है, जिससे जीवन जीने योग्य प्रतीत हो। यही लक्ष्य हमारे सम्वेदनोंको मूल्य प्रदान करता है, हमारे मनोभावोंको परस्पर संयुक्त एवं समन्वित करता है, हमारी कल्पनाको आकार देता है, हमारी सर्जनात्मक शक्तियोंका पथ-निर्देश करता है, हमें क्या याद रखना चाहिए और क्या भूल जाना चाहिए, इसका निश्चय करता है। हम इसका अनुभव कर सकते हैं कि सम्वेदनों, मनोभावों भाववृत्तियों एवं कल्पनाके मूल्य कितने सापेक्ष हैं जबकि ये भी अप्रतिबन्धित इयत्ताएँ नहीं हैं, हमारी मानसिक गतिविधिके ये तत्त्व एक निश्चित लक्ष्यके लिए सतत प्रयाससे प्रभावित होते हैं, हमारे सभी प्रत्यक्ष-बोधतक उसके द्वारा पूर्वग्रहयुक्त हो जाते हैं और कहा जा सकता है कि जिस चरम लक्ष्यकी ओर व्यक्तित्व प्रयासशील है, उसके गोपन-निर्देशके अनुरूप चुने जाते हैं।[1]

तुलसीने अपनी हीनताग्रन्थिसे उबरनेके लिए जो लक्ष्य चुना, वह एक ओर तो उनकी अपनी वैयक्तिक स्थितियाँ एवं 'सुरसरि सम सब कहँ हित' करनेकी उनकी प्रशस्त सामाजिक भावनाके अनुकूल था, दूसरी ओर भक्ति-आन्दोलनकी जिस धाराके सम्पर्कमें वे आये थे उससे भी प्रभावित था। भावसाधनाके मर्मज्ञोंकी मान्यता है कि व्यक्तिका जो सबसे बड़ा अभाव होता है, उसे ही भरनेके लिए प्रभुको अपने विभाव (भावके आलम्बन)के रूपमें ग्रहण करता है। जग जाहिर बात है कि तुलसीने प्रभुको अपने स्वामी······नाथके रूपमें स्वीकार कर अपने जीवनका लक्ष्य रामका दास्य निर्धारित किया था। साधनाका भाव भक्तोंके अनुसार पूर्वजन्मके संस्कारों द्वारा निर्मित अन्तर्वृत्तियोंपर निर्भर करता है। सब समय उसे स्थूल परिस्थितियोंकी ही उपज मानना उचित नहीं होगा, किन्तु तुलसीके क्षेत्रमें लगता है कि संस्कारों और बाह्य परिस्थितियोंका अद्भुत मेल हो गया। अनाथ तुलसीने प्रभुसे अपना सम्बन्ध जोड़ते हुए कहा, 'नाथ तू अनाथको, अनाथ कौन मों सो'[2] और यह भी कि मुझे अपनानेसे लाभ केवल मुझे ही नहीं आपको भी होगा, 'हों सनाथ ह्वेहों सही, तुम हूँ अनाथपति, जो लघुतहि न भितैहौं'[3] एक बार प्रभुकी सेवाको अपने जीवनके चरम लक्ष्यके रूपमें स्वीकार कर लेनेपर तुलसीने अपने सारे व्यवहारों, भावों, संवेदनोंको तदनुकूल ढाल लिया और बहुत सन्तोषके साथ कहा 'तुलसिहि बहुत भलो लागत जग जीवन राम गुलाम को।'[4] रामसे जुड़कर

१. अंडर स्टैंडिंग ह्यूमन नेचर (प्रीमियर पाकेट बुक प्र० सं०) पृ० ६७।
२. विनयपत्रिका ७९.३। ३. वही २७०.४। ४. वही १५५.१०।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तुलसीको अपनी समस्त लघुता…हीनताके बावजूद लगा कि खोटे होते हुए भी वे खरे (राम) के साथ होनेके कारण अब समाजमें चल सकते हैं, स्वीकृत हो सकते हैं। जिस तरह निषाद गुहको लगा था कि 'कपटी, कायर, कुमति, कुजाती, लोक-वेद बाहर सब भाँती' होते हुए भी 'राम कीन्ह आपन जब ही तें, भयउँ भुवन-भूषन तबही तें'[1] उसी तरह तुलसीको भी लगा कि 'घर घर माँगे टूक, पुनि भूपति पूजे पाय, जे तुलसी तब, राम बिनु, ते अब राम सहाय।'[2] रामकी कृपाने भले ही उन्हें राखसे सँवारकर पहाड़से भी भारी बना दिया हो, रामका पवित्र पक्ष पाकर भले ही पञ्चोंमें उनका गौरव हो गया हो,[3] वे यह कभी नहीं भूले कि मैं अपनेमें कुछ भी नहीं हूँ, जो कुछ हूँ रामकी कृपासे हूँ 'आप हौं आपुको नीकेके जानत, रावरो राम भरायो, गढ़ायो…हौं तो सदा खरको असवार तिहारोई नाम गयंद चढ़ायो'[4] अतः उनमें श्रेष्ठत्वकी भावनाका अहंकार कभी नहीं जागा, हाँ व्यक्तित्वका उन्नयन अवश्य ही 'संतत्व'की चरम सीमा तक हो गया।

रामको अपना स्वामी मानकर अपनेको उनके योग्य सेवक बनानेके प्रयासमें ही उन्हें अपनी अपूर्णताका, असमर्थताका, अपने दोषोंका, पापोंका तीखा अहसास हुआ। राम जैसे सर्वगुणसम्पन्न, सर्वसमर्थ, सर्वज्ञ, सर्वधर्ममय प्रभुका तुलसी जैसा गुणहीन, असमर्थ, अज्ञ, अधर्मी सेवक! आखिर किस तरह…किस साधनसे वे प्रभुको अपने ऊपर प्रसन्न कर सकते हैं? उन्हें लगा कि 'तुलसीदास हरि तोषिए सो साधन नाहीं'[5] भौतिक स्तरपर जो निर्धनता थी, साधनिक स्तर पर वही निःसाधनता बन गयी। अपनेको सब प्रकारसे साधनहीन समझनेके कारण ही तुलसीके भक्तिपूरित हृदयमें दीनताका ज्वार उमड़ पड़ा। वेद, पुराण, ज्ञान-विज्ञान, ध्यान, धारणा, योग-यज्ञ आदि साधनोंका भरोसा तो तुलसीको था नहीं, अतः प्रभुके विरुद्ध 'दीन' बन्धुको स्मरणकर अपनी दीनताका ही आश्रय ले तुलसीने उनके अनुग्रहकी याचना की—

वेद न पुरान गान, जानौं न विज्ञान ज्ञान,
ध्यान-धारना, समाधि, साधन-प्रबीनता।
नाहिंन बिराग जोग जाग भाग तुलसी के
दया-दान-दूबरो हौं, पाप ही की पीनता॥

---

१. रामचरितमानस २.१९६.१-२। २. दोहावली १०९। ३. कवितावली ७.६१.१.२। ४. वही ७.६०.१४। ५. विनयपत्रिका १०९.१९।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लोभ-मोह-काम-कोह-दोष कोष मो सों कौन
कलि हू जो सीखि लई मेरिये मलीनता।
एक ही भरोसो राम रावरो कहावत हौं
रावरे दयालु दीनबन्धु मेरी दीनता॥[1]

तुलसीदासने विस्तारपूर्वक और बारबार अपनी दीनताका वर्णन किया है। तुलसीकी मनोवृत्तिको न समझ पानेपर कुछ लोगोंको इसमें पुनरावृत्ति और एक धृष्टताकी गन्ध आ सकती है। तुलसीको जब-जब अपने भीतर कमजोरी महसूस होती थी, जब-जब उन्हें काम, क्रोध, लोभ, मोह आदिका दुःसह वेग जर्जर कर देता था, तब-तब वे दीन स्वरोंमें प्रभुसे रक्षाकी याचना करते थे। उनका विश्वास था कि—

तुलसी राम कृपालु सों कहि सुनाउ दुख दोष।
होय दूबरी दीनता, परम पीन सन्तोष॥[2]

भीतर दैन्य भरा हो और उसे स्वीकार न किया जाये तो वह घातक हो जा सकता है। इसी तरह यदि प्रभुकी कृपाका भरोसा न हो, तो केवल दैन्य मनुष्यको निराश, अकर्मण्य और आत्मघाती बना दे सकता है। तुलसी अहंकारसे बचनेके लिए दैन्यका और आत्मघाती दीनतासे उबरनेके लिए प्रभु-कृपाका सहारा लेते हैं। उनका निर्देश है कि प्रभुके निकट दीनताकी निश्छल स्वीकृतिके द्वारा ही अपने दुःखों, दोषोंसे उत्पन्न दैन्यको दुर्बल और प्रभुकी कृपालुतापर भरोसा रखनेपर ही सन्तोषको पुष्ट किया जा सकता है। अतः निस्संकोच भावसे प्रभुको अपनी त्रुटियों, कमियों, गलतियोंका पूरा विवरण सुना देना 'मम भरोस हिय हरष न दीना' वाली नौवीं भक्तिकी ओर अग्रसर होनेका सही रास्ता है। प्रभुसे धूर्तता करना हजारों मूर्खताओंके बराबर है, क्योंकि वे तो सर्वज्ञ हैं, इसलिए उनके समक्ष सीधे-सच्चे भावसे अपराधोंकी स्वीकृति कर लेनेसे मलिनता मिट जाती है, 'यहाँ को सयानप अयानप सहससम, सूधौ सत भाय कहे मिटति मलीनता।'[3] अतः अपने भीतर दीनता, हीनता, मलिनताका अनुभव करते ही उसको प्रभुको सुना देना तुलसीको आवश्यक लगता था।

फिर एक बात और थी। प्रभु-सा सहृदय श्रोता उन्हें और कहाँ मिलता। उन्होंने अपनी दीनता प्रभुको छोड़कर संसारमें और किसीको कहीं सुनायी?

---

१. कवितावली ७.६२। २. दोहावली ९६, गो० श्रीकान्त शरणका पाठ यहाँ स्वीकार किया गया है, ना० प्र० सभाके संस्करणमें गुन-दोष पाठ है। ३. विनयपत्रिका २६२.१३-१४।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वार्थ और परमार्थ दोनोंकी सिद्धिके लिए वे रामसे ही याचना करना अपना धर्म समझते थे, अपने लिए, उनका निर्णय था : 'स्वारथ परमारथ सुलभ सकल एक ही ओर, द्वार दूसरे दीनता उचित न तुलसी तोर।'[1] चातककी प्रशंसा भी उसकी इसी एकनिष्ठाके कारण उन्होंने की थी—

> तीनि लोक तिहुं काल जस चातक ही के माथ।
> तुलसी जासु न दीनता सुनी दूसरे नाथ॥[2]

सर्वगुण-सम्पन्न प्रभुके समक्ष अपनेको पाते ही प्रभुके महत्त्व और अपने लघुत्वकी युगपत् अनुभूतिसे तुलसी कुछ कह भी नहीं पाते और बिना कहे रह भी नहीं पाते। सामने करुणावरुणालय, दयासागर, परम हितैषी एवं कोमल शील-स्वभाववाले प्रभु हों तो उन्हें अपनी दीनता सुनाकर जो सुख मिलता है, वह अनुभवैकगम्य है। तुलसीके शब्दोंमें—

> कह्यो न परत, बिनु कहे रह्यो परत,
> बड़ो सुख कहत बड़े सों बलि दीनता।
> प्रभुकी बड़ाई बड़ी, आपनी छोटाई छोटी
> प्रभुकी पुनीतता आपनी पाप-पीनता॥[3]

प्रभुके निकट दैन्य निवेदन कर भक्तको जो परम सात्त्विक आनन्द मिलता है वह उसे पुनः-पुनः प्रेरित करता है कि प्रभुको वह अपनी दीन-हीन स्थितिका विवरण सुनाता ही रहे। इस वृत्तिको भक्तोंका यह विश्वास और पुष्ट करता है कि प्रभु दीनदयालु हैं, दीनता सुनकर द्रवित हो जाते हैं और गुणहीन सेवकोंको भी निहाल कर देते हैं। तुलसीने ही कहा है, 'सेवा बिनु, गुन-बिहीन दीनता सुनाये, जे जे तें निहाल किये फूले फिरत पाये।'[4] अतः भक्तोंकी दृष्टिमें पुनः-पुनः दैन्य-निवेदन दोष न होकर गुण ही है।

तुलसीने लौकिक दुःख-कष्टोंसे छुटकारा पानेके लिए भी प्रभुसे प्रार्थना की है, किन्तु उनसे वे सहजमें दीन नहीं होते। पापस्वरूपिणी प्रतिष्ठाके बढ़ जानेके कारण 'बढ़ी रारि' को[5] जाति-पांतिको लेकर लगाये गये लांछनोंको[6] उन्होंने धैर्यके साथ झेल लिया था। शिवजीके किंकरों द्वारा पहुँचायी गयी अधिभौतिक बाधाओंसे वे कुछ अधिक विचलित हुए थे। भगवान् शिवके द्वारपर 'दीन' होकर उन्होंने गुहार अपनी लगायी थी कि कठोर करतति करनेवालोंको शीघ्र

---

१. दोहावली ५४। २. वही २८८। ३. विनयपत्रिका २६२.१-४। ४. वही ८०.७-८। ५. दोहावली ४९४। ६. कवितावली १०६, १०७।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हो वरजिये, नहीं तो श्री रामसे उलाहना पाकर मुझे उलाहना न दीजियेगा।[1] अन्तिम समयमें बाहुपीड़ा एवं वलतोड़ आदि व्याधियोंसे पीड़ित होकर वे सचमुच बहुत विकल हो गये थे और हनुमान-बाहुक, कवितावली, दोहावली आदिमें उन्होंने कातर स्वरमें अपनी दीनताका वास्ता देते हुए श्री राम, हनुमान, शिवजी आदिसे अपनेको रोगमुक्त करनेकी प्रार्थना की थी। इन छन्दोंमें उन्होंने अपने इस अपराधको भी स्वीकारा है कि बचपनकी शुद्ध भावनापर द्रवित होकर रामके द्वारा अपना लिये जानेपर वे 'लोक रीति' में पड़कर, गुसाइँ बनकर 'पति' (प्रतिष्ठा) पाकर फूल उठे थे और खोटे-खोटे आचरण करने लगे थे, इसलिए उन्हें इन व्याधियोंके व्याजसे घोर यन्त्रणा झेलनी पड़ रही है।[2]

सामाजिक दुर्गतिसे उत्पन्न दैन्यसे प्रेरित होकर सामाजिक मंगलके लिए, दीन दुःखीजनोंका संकट मिटानेके लिए, काशीकी महामारी और दुर्व्यवस्थाको दूर करनेके लिए, रुद्रबीसी और मीनकी शनीचरीके प्रकोपको शान्त करनेके लिए भी उन्होंने विनयपत्रिका, दोहावली, कवितावली आदिमें दीन स्वरमें प्रार्थनाएँ की हैं।

तुलसीके दैन्यका सर्वाधिक उत्कर्ष शरणागति-साधनाके अंगके रूपमें हुआ है। कलिके अत्याचारोंसे भयभीत तुलसीने अपने गुणों एवं साधनोंसे उत्पन्न अहंकारका पूर्णतः निरसन कर, अपनी अपात्रता, असमर्थता एवं अन्यान्य दुर्बलताओंके उल्लेख द्वारा आत्मावमाननाकर एकमात्र प्रभुकी कृपाके ऊपर ही सर्वथा निर्भर रहनेका मनोभाव ऐसी रचनाओंमें प्रकट किया है। उन्हें लगता रहा कि सद्गुण, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि श्रेष्ठ साधन तो कलियुगके पापों और अवगुणोंको देखकर व्याकुल हो भाग खड़े हुए हैं। इतनी अनीति और कुरीति हो गयी है कि पृथ्वी सूर्यसे भी अधिक उत्तप्त लगती है, कहाँ जाऊँ, कोई स्थान नहीं है, बुद्धि अकुला उठी है, ऐसेमें कोई अपना नहीं है, स्वयं अपना मन भी नहीं, तुलसीकी सूखती हुई खेतीको अब श्याम घनसे सींचकर प्रभु ही सफल कर सकते हैं, इसीलिए, 'नाथ-कृपा ही को पंथ चितवत दीन हौं दिन राति।'[3] यह जानते हुए भी कि विषय विपत्तिमय है, उन्हें न छोड़ पानेके कारण, महामोहकी सरितामें बहते हुए भी श्री हरिके चरण-कमलकी नौकाका परित्यागकर सामान्यधन रूपी फेनका अवलम्बन ग्रहण करनेके कारण तुलसी अपनेको सबसे बड़ा मूढ़ एवं पापी मानते हुए कह उठते हैं, 'माधव जू मो सम मंद न कोऊ।'[4] दुष्ट मनने

---

१. कवितावली ७.१६५, १६६, विनयपत्रिका ८। २. हनुमान बाहुक ४०, ४१। ३. विनयपत्रिका ४१। ४. वही ९२।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मुझे इस प्रकार बिगाड़ा कि मैं इसके चलते जन्म-जन्ममें रोता ही रहा। शीतल, मधुर, सहज सुख देनेवाले प्रभु प्रेमरूपी अमृतको छोड़कर मोहवश नाना उद्योगोंके द्वारा सुखी होनेकी विफल चेष्टा करता रहा, दुष्कर्मोंके कीचसे चित्तको सानकर मलको मल से धोनेकी मूर्खता करता रहा, गंगाको छोड़कर प्यास बुझानेके लिए व्याकुल हो पुनः-पुनः आकाश निचोड़ता फिरा, सारी रात बिछौना बिछानेका उपक्रम करते-करते ही बीत गयी, कभी नींदभर सो नहीं पाया, 'तुलसीदास प्रभु कृपा करहु अब मैं निज दोष कछु नहिं गोयो।'[1]

यह स्मरण रहे कि समस्त सद्गुणोंसे अलंकृत होते हुए भी शरणागत भक्त भगवान्‌की परम दुर्लभ कृपा पानेकी दृष्टिसे अपनेको अत्यन्त असमर्थ और सब प्रकारसे हीन मानकर परम व्यग्रताका अनुभव करते हैं। भगवत्कृपा अपनेमें सर्वथा स्वतन्त्र होनेपर भी दीनोंपर विशेषरूपसे होती है, अतः वे इसके लिए निरन्तर यत्नवान रहते हैं कि मन, वचन और कर्ममें यह दैन्य मात्र स्थिर रहे एवं जाति, कुल, शील, भक्ति, ज्ञान, सद्गुण आदिका अहंकार मनमें भी न आने पाये। ऐसे दैन्यको भी वे भगवान्‌का प्रसाद ही मानते हैं, क्योंकि उनकी दृष्टिमें भगवत्प्रेम और दैन्य परस्पर पोष्य-पोषक हैं।

अपनी शक्ति जब जवाब दे देती है, तभी तो कोई किसीकी शरणमें जाता है। उस स्थितिमें दीन हो जाना स्वाभाविक ही है। वैष्णव, शैव, शाक्त आदि सभी साधनाओंमें इस दैन्य तत्त्वकी सहज स्वीकृति है। गीतामें वर्णित अर्जुनके दैन्यका उल्लेख किया जा चुका है। दुर्गा-सप्तशतीमें भी 'शरणागत-दीनार्त्त-परित्राण-परायणे, सर्वस्यार्त्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तुते'[2] कहकर शरणागतिके साथ दीनताके अविच्छेद्य सम्बन्धको उजागर किया गया है। विभिन्न पुराणों एवं स्तोत्रोंमें शरणागतिके लिए दैन्यके महत्त्वको स्वीकार किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि रामानुजके गुरु-के-गुरु यामुनाचार्य (दसवीं-ग्यारहवीं सदी ईस्वी) कृत आलवन्दरार-स्तोत्र तथा महाकवि जगद्धरभट्ट (चौदहवीं सदी ईस्वीके उत्तरार्धमें वर्त्तमान) कृत स्तुति कुसुमाञ्जलिके अनुशीलन द्वारा भी तुलसीने अपने दैन्य भावको समृद्ध किया था। आलवन्दार-स्तोत्रमें अपनेको असख्य अपराधोंसे आवृत मानकर यामुनाचार्यने उपायान्तरशून्य हो प्रभुको शरण ग्रहण करते हुए कहा था—

न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी, न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिंचनोऽनन्यगतिः शरण्य त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये॥[3]

१. वही २४५। २. दुर्गा-सप्तशती ११.१२। ३. आलवन्दार स्तोत्र २५।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थात् न तो मैं धर्मनिष्ठ हूँ, न आत्मज्ञान-सम्पन्न हूँ, न आपके चरणारविन्दों में भक्तिमान् ही हूँ, हे शरण्य प्रभु, मैं अकिंचन, अनन्यगति आपके चरण-कमलोंको शरण लेता हूँ। इस स्तोत्रके अनेक अन्य छन्दोंमें दैन्यका बड़ा मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है।

जगद्धरभट्टने तो 'स्तुति-कुसुमाञ्जलि'के नवम, दशम, एकादश स्तोत्रोंके नाम ही कृपणाक्रन्दन, करुणाक्रन्दन तथा दीनाक्रन्दन रखकर भगवान् शिवकी वन्दना करते हुए अपनी दीनताका बहुत करुणापूर्ण निवेदन किया है। अपनी अधमताको ही शिवकी अनुकम्पाकी पात्रताका हेतु बताते हुए उन्होंने लिखा है—

पापः खलोऽहमिति नार्हसि मां विहातुं
किं रक्षया कृतमतेरकुतोभयस्य।
यस्मादसाधुरधमोऽहमपुण्यकर्मा,
तस्मात्तवास्मि सुतरामनुकम्पनीयः॥[1]

अर्थात् 'यह पापी और नीच है' ऐसा समझकर मेरा परित्याग करना उचित नहीं है, क्योंकि अकुतोभय, पुण्यात्माओंको आपकी रक्षाका प्रयोजन ही क्या है? चूँकि मैं अत्यन्त असाधु, अधम और पापात्मा हूँ, इसीलिए तो आपके द्वारा अनुकम्पनीय हूँ।

परम्पराके सन्दर्भमें रखकर देखनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसीदासका दैन्य शरणागत भक्तोंकी भावनाओंके अनुरूप ही है। फिर भी सामान्यताके साथ साथ कुछ-न-कुछ विशिष्टता भी हर एकमें होती ही है। ऐसा लगता है कि आरम्भिक स्थितिमें तुलसीदासने 'मानी चातक' को अपना आदर्श माना था, जो न तो याचना करता है, न संग्रह करता है और न सिर झुकाकर लेता ही है, निश्चय ही ऐसे 'मानी याचक' को राम घनश्यामके अतिरिक्त और कोई नहीं दे सकता, 'नहिं जाचत, नहिं संग्रही, सीस नाइ नहिं लेइ। ऐसे मानी मांगने हि को बरिद बिन देइ।'[2] उन्हें यह देखकर बहुत सन्तोष हुआ था कि केवल अपने प्रियतम मेघके प्रति ही अपनी दीनताका निवेदन करते हुए भी चातकने अपनी प्रीतिकी विलक्षणतासे संसारमें एक नयी रीति चलायी, याचकके स्थानपर दानीको ही 'कनौड़ा' बना दिया, 'प्रीति पपीहा पयदकी प्रकट नई पहिचानि, जाचक जगत कनाउडो, कियो कनौडो दानि।'[3] पर अपने इस भावका निर्वाह वे अन्ततक नहीं कर पाये। 'जीवन अवधि अति नेरे' देखकर वे विकल होकर मान त्यागकर, बिन बुलाये ही रामके द्वारपर 'मचला' बनकर धरना देकर बैठ गये कि भले ही

१. स्तुति कुसुमाञ्जलि ११.३७। २. दोहावली २९०। ३. वही २८९।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यमके भट धक्का दे-देकर थक जायँ, तो भी मैं तबतक नहीं उठूँगा जबतक राम यह नहीं कह देते कि तुलसी, तू मेरा है।[1] अपनेको सब प्रकारसे दीन मान-कर अपने सम्बन्धके कारण ही वे प्रभुके संरक्षणकी याचना करते हैं, जिस प्रकार टूटी बाँह भी गले पड़ती है, फूटी आँखमें भी पीड़ा होनेपर उसके हितका प्रयास करना पड़ता है, उसी प्रकार अपराधी होते हुए भी मैं आपका हूँ, इसलिए मुझे न न भुलाइये, 'अपराधी तउ आपनो तुलसी न बिसरिए, टूटियो बांह गरे परै, फूटे हूं बिलोचन पीर होति हित करिए।[2] इसी भावावेशमें तुलसी अपनेको संसारमें सबसे अधिक दीन मानकर और प्रभुको सर्वाधिक दीन-हितकारी मानकर उनसे अपने त्रिविध तापोंको दूर करनेकी प्रार्थना करते हुए कहते हैं—

> तुम सम दीनबंधु, न दीन कोउ मो सम सुनहु नृपति रघुराई।
> मो सम कुटिल मौलिमनि नहिं जग, तुम सम हरि न हरन कुटिलाई॥[3]

तुलसीदास अपने इसी दैन्यके सहारे एक ओर संसारके व्यक्तियोंके निकट अदीन और दूसरी ओर प्रभुके निकट कृपापात्र हो गये थे। अहंकारको दूरकर जो एकनिष्ठ दैन्य मानव जीवनके चरम प्राप्यको सुलभ बना देता है, वह निश्चय ही महनीय है।

●

---

१. विनयपत्रिका २५७। २. वही २७१ ७-८। ३. वही २४२.१-२।

ईश्वर स्वयं अवतार क्यों ग्रहण करता है

परित्राणाय साधूनाम्—इस श्लोकके अनुसार भक्तोंके लिए प्रकट होनेमें ईश्वरको बड़ा आनन्द मिलता है।

एक दिन अकबरने हँसीमें बिरबलसे कहा, 'तेरा ईश्वर भक्तके लिए स्वयं क्यों दौड़ता है, क्या उसके पास कोई नौकर-चाकर नहीं हैं?'

कई दिन बीत जानेपर बादशाह जब परिवारके साथ नौका बिहार करने निकले तब बिरबलने दासीके हाथमें बादशाहके नन्हें बालकके बदले एक मोमका पुतला पानीमें गिरवाया।

'राज-पुत्र गिरा'—सुनते ही बादशाह जलमें कूद पड़े। 'आप स्वयं क्यों कूद पड़े महाराज, आप कोई सेवकको आज्ञा देते' बिरबलने कहा।

'मेरा नन्हा मुन्ना पानीमें गिरा, और मैं सेवकसे कहूँ?' बादशाह बोले।

'इसी कारण हमारे भगवान् भक्त-कार्यके लिए स्वयं अवतार ग्रहण करते हैं' बिरबलने जबाब दिया।

—य० ब० क्षीरसागर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हे माँ, कल्याणी, करुणा कर !

श्री हरिहर पाण्डेय एम० ए०, साहित्यरत्न

विवेकानन्द नगर, वाराणसी

क्षमा करो अपराध देवि, हे देवि, दयामयि, करुणा कर !
आया हूँ मैं शरण तुम्हारी, माँ, कल्याणी, करुणा कर !!
तू तो हो माता, ममतामयि, माँ, महिमामयि, करुणा कर !
दुर्गे, दुर्गम दुर्ग जीत, दारिद्रय, दोष, दुःख, दुरित दूर कर !!
माँ कल्याणी, करुणा कर !

मन्त्र, यन्त्र कुछ नहीं जानता, स्तुतिका भी ज्ञान नहीं है !
आवाहन, ध्यान करूँ कैसे माँ, महिमाका भी भान नहीं है !!

मुद्राएँ भी नहीं जानता, नहीं कल्पना और कलंपना !
पर माँ, इतना सही जानता, सुखद तुम्हारे पीछे चलना !!

पूजाकी विधि ज्ञात नहीं है, है अभाव धनका, साधनका !
परम आलसी भी मैं माता, हूँ अयोग्य, अविवेकी मनका !!

फिर भी माँ तू परोपकारिणि, क्षमा सभी अपराध करेगी !
पुत्र कुपुत्र भले ही हो, माता न कुमाता कभी बनेगी !!

पृथ्वीमें पुत्र बहुत तेरे हैं ज्ञानी, मानी, ध्यानी !
पर मेरे जैसा शायद ही अज्ञानी, अभिमानी !!
फिर भी मेरा त्याग न समुचित शिवे कभी तू सहन करेगी !
पुत्र कुपुत्र भले ही हो माता न कुमाता कभी बनेगी !!

• •

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संतुलन—प्रकृतिका एक अटल नियम

--फ़रहत कमर, एम० ए०

बटला हाउस, नई दिल्ली—११००२५

मानव-शरीर प्राकृतिक सन्तुलनका एक श्रेष्ठ उदाहरण है परन्तु सन्तुलन केवल मानव-शरीर तक ही सीमित नहीं। समस्त संसार और फिर पूरे ब्रह्माण्डमें फैली-बिखरी हर वस्तुमें सन्तुलन है।

सन्तुलन सुन्दरता है !

सन्तुलन प्रकृतिका नियम है !!

यदि हम ब्रह्माण्डके विस्तारका अनुमान लगाना चाहें तो आश्चर्यके अतिरिक्त हमें कुछ नहीं मिलेगा। प्रकाशकी गति १,८६,२४० मील प्रति सेकण्ड है। इस गतिसे यदि प्रकाश चलता रहे तो सोचिये कि एक मिनट, फिर एक घण्टे और फिर एक दिनमें कितनी दूरी तय होगी। यदि हम हिसाब लगायें तो प्रकाश एक दिनमें १६,२९,१०,३६,००० मीलकी दूरी तय करेगा। अब इस गिनतीको ३६५से गुणा कीजिये। यह कल्पनातीत दूरी 'एक प्रकाश वर्ष' (Light year) कहलाती है।

वैज्ञानिक अपने आश्चर्यजनक उपलब्ध साधनोंसे ब्रह्माण्डमें छः करोड़ प्रकाश वर्षकी दूरी तक आँक चुके हैं परन्तु उनका विचार है कि यह दूरी समस्त ब्रह्माण्डकी दूरीका लगभग दो प्रतिशत है। इसका अर्थ हुआ कि वास्तवमें ब्रह्माण्ड अरबों प्रकाश वर्षकी दूरी तक फैला हुआ है। इस असीम-अनन्त विस्तारकी कल्पना करके ही मानव-मस्तिष्क चकरा जाता है। इस विस्तारमें कितने ही सौर्य-मण्डल (Solar-systems) तथा कितनी आकाश-गंगाएँ (Galaxies) फैली हुई हैं। हमारी पृथ्वीका घेरा २५ हजार मील है परन्तु पूरे ब्रह्माण्डमें इसका अनुपात हिमालय पर्वत और एक कणका भी नहीं है क्योंकि ब्रह्माण्डमें फैले असंख्य सूर्य तथा असंख्य तारे हमारी पृथ्वीसे हजारों गुना बड़े हैं।

एक मनुष्य महीनोंकी तपस्याके पश्चात चलती हुई साईकलको केवल कुछ क्षणोंके लिए स्थिर रखनेमें सफल होता है। एक सरकसका मदारी बड़े

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कठिन परिश्रमके पश्चात पाँच-सात गेंदोंको एक क्रमके अनुसार हवामें उछालने-घुमानेमें सफल है परन्तु यह अरबों-खरबों उप-ग्रह हजारों मीलकी गतिसे अपनी किलीपर भी तथा किसी दूसरे ग्रहके चारों ओर भी लाखों वर्षसे घूम रहे हैं परन्तु अपने रास्ते तथा अपनी सीमासे हटते नहीं। एक वैज्ञानिक बड़े यत्नके पश्चात् बहुतसे चुम्बकोंकी सहायतासे लोहेकी कुछ गेंदोंको कुछ देरके लिए सन्तुलित रख सकता है परन्तु गेंदोंकी संख्या बढ़ जाये या समय कुछ अधिक बीत जाये तो सारी गेंदें गिर जायें, एक दूसरेसे टकरा जाय परन्तु हजारों-लाखों मील प्राधिके अनगिनित ग्रह अनन्त शून्यमें कितनी पूर्णतके साथ घूम रहे हैं कि न गिरते हैं, न एक दूसरेसे टकराते हैं।

यह है प्रकृतके सन्तुलनका कमाल !

कितना सूक्ष्म है यह सन्तुलन ?

अपनी पृथ्वीको निहारिये—समुद्र मीलों गहरे हैं तो पहाड़ मीलों ऊँचे। भूगर्भ शास्त्रियोंका कहना है कि यदि संसारके पहाड़ों तथा अन्य ऊँचाइयोंको संसारके समुद्रों तथा अन्य गहराइयोंमें भर दिया जाय तो पृथ्वी एकदम सपाट हो जायगी। इसका अर्थ है पृथ्वीकी ऊँचाई तथा गहराईमें भी सन्तुलन है और यह सन्तुलन सदा बना रहता है। भूचाल आते हैं तो कुछ द्वीप गायब हो जाते हैं परन्तु कहीं और कुछ द्वीप बन भी जाते हैं। धरतीके सीनेमें भरा गरम लावा अपने ऊपर मिट्टी तथा चट्टानों-का भार सम्भाले हुए है और धरती-का सन्तुलन बनाये हुए है। इसके अतिरिक्त पहाड़ों तथा समुद्रोंका जमाव, मैदानोंका फैलाव, नदियोंका बहाव, मिट्टीका दबाव—सभी कुछ सन्तुलित हैं। यदि इस सन्तुलनमें गड़बड़ हो जाय तो धरती डाँवाँडोल हो जाय, पहाड़ फट पड़े और समुद्र धरतीपर फैल जाय—प्रलय आ जाये !

फूलकी पंखड़ियोंमें कितना सुन्दर सन्तुलन है ?

कोई पेड़, कोई पौधा, कोई पत्थर, कोई प्राणी असंतुलित नहीं। नदीका नम्र बहाव, जंगलकी सायँ-सायँ, रातमें प्रकृतिकी गम्भीर सांसें यदि असन्तु-लित होती तो प्रकृतिमें शोर होता, क्योंकि असन्तुलित ध्वनि ही शोर कहलाती है। फिर यह हमारे हृदयकी धड़कन ! यह धड़कन ब्रह्माण्डकी सारी प्राकृतिक ध्वनियोंसे सामञ्जस्य रखती है जिस प्रकार एक कलाकार अपनी कृतिको यथासम्भव सन्तुलित बनाना चाहता है उसी प्रकार उस महान् कलाकार ईश्वरने भी अपनी हर रचनाओंको पूर्ण सन्तुलन प्रदान किया है।

मानव-जीवनमें भी पालनेसे चिता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तक हर बातमें सन्तुलन पाया जाता है—प्रकृति मानवको सन्तुलित पैदा करती है और सन्तुलित रखना चाहती है। यह और बात है कि अनेक कारणोंसे कोई विगड़ जाये परन्तु किसीके विगड़नेपर माता-पिता, अध्यापक, समाज तथा कानून विगाड़की तीव्रताके अनुपातसे ही उस व्यक्तिपर सख्ती बढ़ा देते हैं—उद्देश्य होता है व्यक्ति-विशेषको सन्तुलित करना। स्वार्थको त्यागसे सन्तुलन प्रदान किया जाता है तो घृणाको प्रेमसे। जो व्यक्ति स्वछन्द, नियमी तथा हानिकारक हो जाता है; समयके हाथ उसको ठीककर देते हैं। चतुर स्त्रीको मूर्ख पति मिलता है तो सफाई पसन्द पुरुषको फूहड़ पत्नी। दोनों एक दूसरेसे उलझते हैं, टकराते हैं और अन्ततः एक-दूसरेसे रगड़-रगड़कर सन्तुलित हो जाते हैं। प्रकृति एक दूसरेसे विरोधी वस्तुओंके मेलसे सन्तुलन पैदा कर देती है, ऐसा प्रकृतिका नियम है। वहुतसे दुःख, वहुत-सी विपत्तियाँ मनुष्यपर इसीलिये आती हैं ताकि वह सन्तुलित हो जाये।

निर्जीव वस्तुयें और पशु-पक्षी प्रकृति द्वारा निर्धारित किये नियमोंके अनुसार अपना जीवन पूराकर जाते हैं परन्तु मनुष्यको बुद्धि तथा बुद्धिके प्रयोगकी स्वतन्त्रता प्रदान की गयी है। वहुधा बुद्धि भटककर कुमार्गपर चलने लगती है, मनुष्यको भरमाती है, अपने 'चमत्कार' दिखाती है और मानव-जीवनके सन्तुलनको अस्त-व्यस्त कर देती है। बुद्धि मानवको स्वार्थी वनाती है तो उसकी मानसिक शान्ति छिन जाती है। बुद्धि मानव-स्वादको गलत राहपर ले जाती है तो मनुष्यकी पाचन-क्रियाका सन्तुलन विगड़ जाता है। बुद्धिने मनुष्यको आलस्य तथा कामचोरी सिखायी तो सामाजिक-जीवन शिथिल हो गया, काम-क्रोधमें व्यस्त किया तो प्रसन्नता जीवनसे लुप्त हो गयी।

आधुनिक-जीवन सांसारिक जीवनके विगड़े हुए सन्तुलनका एक अच्छा प्रमाण है। मानवने वैज्ञानिक तथा औद्योगिक उन्नतिमें सीमा-उलंघन किया तो संसारकी दशा यह हो गयी कि बड़े-बड़े शहरोंमें औषजनकी कमी हो गयी, समुद्र इतने दूषित हो गये कि उनमें रहनेवाले प्राणी मरने लगे, मौसमोंका सन्तुलन विगड़ गया। आज रेडियोधर्मी कण जीव-जन्तुओंके ही नहीं बल्कि वनस्पतिके अन्दर भी पहुँच चुके हैं; सभ्य संसारकी ही वायु दूषित नहीं हुई है बल्कि दूरस्थित ध्रुवोंके वायुमण्डलमें भी विष फैल गया है।

मनुष्य जीवनका सन्तुलन खो दिया!

प्रकृति सन्तुलन चाहती है!!

तव?

बुद्धि तो हार चुकी है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हाँ विवेक संसारको सीधी राह दिखा सकता है और मनुष्यको विवेक प्रदान करनेके लिए धर्मसे बढ़कर और कोई चीज नहीं हो सकती। मानव-बुद्धि सीमित है, भटक सकती है, भटक जाती है परन्तु जीवनके क्षेत्रमें बहुत दूर तक दृष्टि रखनेवाले महान् व्यक्तियोंने संसारको धर्मका जो मार्ग दिखाया है, वह सच्चा मार्ग है, सन्तुलित मार्ग है। आजके भटके, विगड़े संसारके जीवनमें केवल धर्म ही वह सन्तुलन पैदा कर सकता है जो मनुष्यको आधुनिक संसारमें प्रसन्नताके साथ जीनेका मार्ग दिखायेगा।

●

श्रद्धाका बल

'ईश्वरपर श्रद्धा'—यह मनुष्य-जीवनकी अद्भुत वस्तु है। एक जहाज महासागरमें बड़े तूफानमें मिल गया और खिलौनेकी तरह लाटोंपर डोलने लगा। एक योरोपियन पति-पत्नी जहाजपर थे। पतिदेव बिल्कुल अविचल थे।

पत्नीने कहा, 'जहाज डूबनेका बड़ा भय है। इससे बचनेका कोई उपाय निकालिये। आपको डर नहीं लगता?' पतिने अपना पिस्तौल उठाकर पत्नीके ओर निशाना लगाकर कहा, 'अभी तुझे डर नहीं लगता?'

'जब पिस्तौल आपके हाथोंमें है, तब डर कैसा?' श्रीमतीजी बोलीं।

'तो जब यह तूफान हमारे प्रियतम प्रभुके हाथमें है तो डरनेका क्या कारण? प्रेममय प्रभुके इतने समीप होकर हम डरें क्यों?' पतिदेवने कहा।

—म० श्री०

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अमृत-कुम्भ

—अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज—

श्रद्धा कामधेनु है। वह माँके समान मनुष्यकी रक्षा करती है। ज्ञान-विज्ञान या धन-सम्पदामें ही शक्ति-सिद्धिका निवास नहीं है। श्रद्धा धीरे-धीरे हृदयमें ऐसा रासायनिक परिवर्तन करती है कि हम परम पुरुषार्थके अनुभव-योग्य हो जाते हैं। परम पुरुषार्थ स्वयं भगवान् है। वह सब समय, सर्वत्र और सब रूपोंमें विद्यमान है। श्रद्धाके द्वारा उनकी विद्यमानता वर्त्तमानतामें परिणत हो जाती है। उनका प्रत्यक्ष अनुभव होता है। वही अमृत है। अमृतत्व सर्वत्र भरपूर है। कोई कण, कोई क्षण, कोई मन ऐसा नहीं है, जिसके अन्तरालमें अमृतका शान्त समुद्र न रहता हो। अमृत प्रकट नहीं करना है। उसका अनुभव ही प्रकट करना है। अनुभव हृदयमें होता है और श्रद्धा हृदयको अनुभव-योग्य बनाती है।

सत्त्वात्मक कारणवरि क्षीर-समुद्रके नामसे पुराण-प्रसिद्ध है। देव-दानव शक्तियोंके द्वारा उसका संघटित मन्थन उसमें निहित पूर्व-पूर्व युगोंके विष-संस्कारको पृथक् कर देता है। रत्न प्रकट होते हैं। परन्तु रत्न चाहे नित्य-परोक्ष हों, चाहे नित्य-अपरोक्ष यदि अज्ञात हों तो वाक्य-प्रमाणके विना उनका आवरण-भङ्ग नहीं होता—साक्षात्कार नहीं होता। यही कारण है कि समुद्र-मन्थनके अनन्तर भी अमृत अज्ञात ही रहता है। उसको लोक साधारणके द्वारा आस्वाद्य बनानेके लिए शब्द-गरुड़की अपेक्षा होती है। अमृतका साधारणीकरण गरुड़के द्वारा सम्पन्न होता है। गरुड़ शब्दात्मक है। उनकी पक्ष-ध्वनिसे साम-संगीतका विस्तार होता है। वे वेदात्मक हैं। उन्हींपर आरूढ़ होकर भगवान् अपने भक्तोंको दर्शन देनेके लिए आते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि भगवद्-विषयक श्रवण-वर्णन ही भगवान्की अभिव्यक्तिका वाहन है। भगवान् गरुड़पर आरूढ़ होकर ही भक्तोंके सम्मुख प्रकट होते हैं। वही अमृत हैं और गरुड़ उन्हें लोक-भोग्य बनाते हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि शब्द-गरुड़का आविर्भाव विनता-विनययुक्त वृत्तिके द्वारा हुआ है।

ठीक भगवान्के आविर्भावके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

समान ही अमृतका आविर्भाव भी लोक-व्यवहार गरुड़के द्वारा ही हुआ है। ऐसा वर्णन आता है। देवताओंने अमृतको अत्यन्त गुप्त करके सुरक्षित कर दिया था। वह जीवोंके लिए दुर्लभ था। भगवान्‌ने ऐसी लीला रची कि विनता और कद्रूमें विवाद हो गया कि सूर्यके अश्व श्वेत हैं या कृष्ण हैं। परिणामतः यह निश्चय हुआ कि सत्यका पक्ष स्वामी होगा और मिथ्या-पक्ष दास। कद्रूके पुत्र कृष्ण सर्पोंने सूर्यके अश्वोंको आवृत कर दिया। वस्तुतः आवरण सर्पवत् दुःखदायी है विनता दासी हो गयी। कद्रूने उन्हें दास्यमुक्त करना स्वीकार तो किया पर अमृतकी उपलब्धि होनेपर। गरुड़ अमृतके लिए प्रयत्न-शील हुए। देवताओंने अमृतको इतना गुप्त रख छोड़ा था कि भगवान्‌के वेदात्मक अथवा वाक्यात्मक वाहन गरुड़के लिए भी उसकी प्राप्ति कठिन थी। देवता इन्द्रिय हैं। इनके सम्मुख अमृत नहीं होता। पश्चात्-भागमें गुप्त रहता है। गरुड़को इन इन्द्रिय-देवताओंका विरोध करना पड़ा। वाक्य-प्रमाणकी जितनी गति है उतनी गति किसी भी इन्द्रिय देवता या वैज्ञानिक यन्त्रकी नहीं है। गरुड़ विजयी हुए। अमृत-कुम्भ उन्हें प्राप्त हुआ। जो भगवान्‌का कृपा-पात्र होता है—वाहन होता है उसे ही अमृतत्वकी उपलब्धि होती है। उन्होंने देवताओंको, इन्द्रियोंको पराजित करके अमृत उपलब्ध किया और लोक-व्यवहारमें ले आये। जहाँ-जहाँ उन्होंने उस अमृत-कुम्भकी प्रतिष्ठा की, वहाँ-वहाँ कुछ अमृतके विन्दु छलक पड़े। कुम्भकी स्थापनाके स्थल ही अमृत उपलब्धिके द्वार बने।

क्षार-समुद्रसे परिवेष्ठित भारत-भूमि स्वभावतः मलिनताके कलंक-पंकसे मुक्त है। इसके दोष-कोष समुद्रमें बह गये हैं। यह पुण्य-प्रक्षा-लित भूमि है। भौगोलिक दृष्टिसे इसके चार पवित्र स्थानोंमें उस अमृत-कुम्भकी प्रतिष्ठा हुई थी। इन स्थानोंमें विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर और ब्रह्मका प्रकाश है। ऋषिगण जो कि ज्ञानकी मूर्ति हैं अपने वचन-माध्यमके द्वारा यहीं अमृतत्वकी अभिव्यक्ति किया करते थे। स्थानकी दृष्टिसे यह विश्व, तैजस, प्राज्ञ एवं तुरीयकी भूमि है। यहाँका ज्ञान-विज्ञान अमृतत्वसे भरपूर है। कालिक-दृष्टिसे ऐसे गृह-योग जो खगोलके लुप्त-सुप्त अमृतत्वको प्रबुद्ध कर देते हैं चारों स्थानोंमें बारह-बारह वर्षपर अर्थात् द्वादश-वर्षात्मक कालयोगसे प्रकट होते हैं। गंगा-त्रिवेणी, गोदावरी, क्षिप्रा नदियाँ अपनी जलधारामें अमृत-वस्तुको प्रवाहित करती हैं अर्थात् देश-काल एवं वस्तु तीनों अमृतके प्रादुर्भावके योग्य हो जाते हैं। दानसे धनकी पवित्रता, स्नानसे शरीरकी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पवित्रता, श्रद्धासे मनकी पवित्रता और ऋषियोंके द्वारा ज्ञान प्राप्त करनेसे बुद्धिकी पवित्रता प्राप्त होती है। मनुष्यके चित्तका निर्माण ही उसके जीवनका निर्माण है। यदि चित्त पवित्र हो जाय तो काम, क्रोध, लोभ, मोहकी वासनाएँ क्रियान्वित होने योग्य न बनें और मनुष्यका जीवन निषिद्ध भोग, हिंसा, परिग्रह तथा पक्षपातसे मुक्त हो जाय। जो लोग चित्तके निर्माणके विना केवल वाह्य सेना, आरक्षी अथवा विधानके द्वारा चरित्रको पवित्र बनाना चाहते हैं उनका प्रयास इसलिए विफल होता है कि उनके पास चित्तकी वासनाओंमें शोधक संस्कार डालनेकी कोई युक्ति नहीं है। यह ठीक समयपर शास्त्रोक्त स्थानपर और पावन वस्तुओंके संयोगसे जो स्नान, दान, श्रद्धासे एक अपूर्वकी उत्पत्ति होती है अन्तःकरणमें वह सदाके लिए प्रभावशाली ढंगसे स्थिर हो जाती है और आवश्यक होनेपर अपने स्वभावको प्रकट करती रहती है। यह अमृत-कुम्भ मनुष्यके जीवनमें अनेक प्रकारसे अमृतत्वका संचार करता है। ज्ञानके द्वारा बुद्धिमें, धर्म-श्रद्धाके द्वारा मनमें, पवित्रताके द्वारा शरीरमें, दानके द्वारा धनमें और वासनाके शोधनके द्वारा समस्त लोक-व्यवहारमें एक उच्चकोटिका प्रकाश भर देता है जिससे मनुष्यका जीवन उज्ज्वल एवं कर्त्तव्य-पथकी ओर अग्रसर हो जाय। यह कुम्भका मेला अन्तःशुद्धिकी दृष्टिसे आध्यात्मिक, देवता-प्रसादकी दृष्टिसे अधिदैविक एवं लोक-चरित्रमें पवित्रताका संचार करनेके कारण आधिभौति शुद्धिका हेतु है।

इस मेलेमें प्रमाण-शुद्धिकी दृष्टिसे प्रवचनोंका श्रवण करना चाहिए। ज्ञान-पथके पथिकोंके लिए प्रवचन प्रमाण है। भक्ति-पथके पथिकोंको इस कुम्भ-मेलामें नाम-संकीर्तन करना चाहिए। ज्ञान-मार्गमें वेदान्त-श्रवणकी जो महिमा है भक्ति-मार्गमें भगवन्नामके श्रवण और संकीर्तनकी भी वही महिमा है। धार्मिक पुरुषोंको चाहिए कि वे इस कुम्भ-कालमें अपने जीवनमें कोई इन्द्रिय-संयमतात्मक नियम स्वीकार करें; व्रत करें, दान करें, स्वाध्याय करें। तीर्थ उसी व्यक्तिपर अपना प्रभाव प्रकट करते हैं जिसके हाथ-पाँव एवं मन संयत होते हैं। लोग जिसकी पवित्र कीर्तिका ज्ञान करते हैं वह लोगोंके वाक्-प्रभावसे भी पवित्र हो जाता है। शब्दमें अनन्त शक्ति निहित है। यह गरुड़ है, यह भगवान्‌को लेकर आता है। भगवान् ही अमृतत्व हैं। अमृतत्व मानो जीवनकी सर्वांगीण पूर्णता। यह प्रत्येक देशमें, प्रत्येक काममें प्रत्येक मनुष्यके लिए अपेक्षित होती है और मनुष्यकी इस स्वाभाविक अपेक्षाकी पूर्तिमें इस उष्ण कुम्भका महान् उपयोग है। ●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बढ़ती हुई जनसंख्या : एक समीक्षा

श्री रामकुमार भुवालका

कलकत्ता

बात बहुत पहलेकी है जब घरमें बहुत-से दुधारू पशु, विशाल कृषि-भूमि और विशाल परिवारको गृहस्थीकी सम्पन्नताका लक्षण माना जाता था। उस समय धनका इतना महत्त्व न था और न उसकी इतनी आवश्यकता महसूस की जाती थी क्योंकि अन्न, शाक, दूध आदिकी घरमें कोई कमी नहीं रहती थी। फसलमें होनेवाली कुछ साग-सब्जियोंको सुखाकर रख लिया जाता था और गैर फसलमें उनका उपयोग किया जाता था। लोगोंकी आवश्यकताएँ कम थीं, जीवन सरल व सादा था, घरमें लोग मोटे कपड़े-धोती आदि पहनकर ही सन्तुष्ट रहते थे। घी, दूध सस्ते थे और नौकर भी घरके काम-काजके लिए सस्तेमें मिल जाते थे। जीवन सात्त्विक था और सभी स्वस्थ व प्रसन्न रहते थे। उन दिनों कोई परिवार-नियोजनका नाम भी नहीं जानता था।

सन् १९३७ की बात है। मेरे परिवारके एक माननीय सदस्यने मुझे तार देकर रतनगढ़ (राजस्थान) में बुलाया जो मेरी जन्म-भूमि है। जहाँ मुझे ठहराया गया वहाँ सब प्रकारका आराम था। जब भोजनका समय आया तो मैंने सोचा कि मुझे तो भोजन यहीं करना होगा, परिवारके साथ नहीं। कारण मैंने विधवासे विवाह किया था और इसलिए मुझे भुवालका जातिसे बहिष्कृत कर दिया गया था। लेकिन बात उल्टी ही नजर आयी। उनकी पूजनीया माताजीने कहला भेजा कि भोजन चौकेमें ही करना होगा और वह भोजन स्वयं खिलायेंगी। वह काफी आयुकी वृद्धा थीं और हमारे कुटुम्बमें उनका काफी आदर था। मैंने कहला भेजा कि मुझे भोजन यहीं भेज दिया जाये, लेकिन मेरी बात नहीं मानी गयी और अन्ततः मुझे चौकेमें ही भोजन करने जाना पड़ा। वह स्वयं मेरे ऊपर पंखा झल रही थीं और उनके आँखोंमें आँसू थे। मैंने आदरके साथ उनसे पूछा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आपको क्या कष्ट है ? आपका परिवार तो काफी सुखी व सम्पन्न माना जाता है। आपके लड़के-पोते भी काफी बड़े हो गये हैं और वे सभी आपका सम्मान करते हैं। पैसेकी कोई कमी नहीं है। इसपर उन्होंने अपने हृदयके उद्‌गार निकाले—मैंने सुना है कि तुम समझदार हो। अब तुम्हीं सलाह दो कि हम क्या करें ? हमारा परिवार काफी बड़ा है और इस वृद्धावस्थामें भी हमको घरका सारा कामकाज सम्हालना पड़ता है-कभी कोई बीमार, कभी किसीका विवाह, कभी करोंका सम्बन्ध और सबके परिवारोंमें जो रोजकी घटनाएँ होती रहतो हैं, इसे करनेमें ही सारा समय चला जाता है। कभी-कभी तो रातभर जागना पड़ता है जिससे ईश्वर-भक्तिके लिए भी समय नहीं मिल पाता ? "दोनों पति-पत्नी काफी शालीन, धर्म-शीस और ईश्वर-भक्तथे। उनका दुःख सुनकर मेरे मनको भारी पीड़ा हुई। वे परिवारकी विशालता और कार्यभारसे दुखी थे। मैंने सलाह दी–' दादीजी, आपने ठीक ही कहा है, अगर आप विश्वास करते हैं और अपना शेष जीवन ईश्वर-स्मरणमें लगाना चाहते हैं तो आप दोनों वाराणसी चले जाइये। घरवाले तो अन्तिम क्षणों तक आपका पीछा नहीं छोड़ेंगे। परन्तु यदि आप संकल्प कर लें तो कोई रोक नहीं सकेगा।' मेरी इस सलाह और ईश्वरकी प्रेरणासे उन्हें भारी बल मिला। वे दोनों वाराणसी चले गये और वहीं उनका प्राणान्त हुआ।

इस एक घटनासे परिवारकी विशालतासे होनेवाले कष्टोंका परिचय मिलता है। मैं स्वयं इसका प्रमाण हूँ। उस समय मेरे दो लड़के और दो लड़कियाँ थीं। मैंने डाक्टरको बुलाया और अपनी पत्नीका आपरेशन करनेके लिए कहा—डाक्टरने कहा कि आपरेशन-की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि अब आगे आपके कोई बच्चा नहीं होगा।

लेकिन दो-ढाई वर्ष बाद मेरी पत्नी पुनः गर्भवती हो गयी, तब मैंने उसी डाक्टरको बुलाकर अपनी नाराजगी व्यक्त की। डाक्टरने विवशता प्रकट करते हुए कहाकि उस समय उसे ऐसा ही लगता था, इसीलिए उसने आपरेशन न करानेकी सलाह दी थी। अब गर्भवती हो जानेके कारण पत्नीका आपरेशन करवाना ठीक नहीं था, ऐसी डाक्टरकी राय थी। मैंने भी प्रभु इच्छाके आगे घुटने टेक दिये, लेकित दिलमें बड़ा मलाल रहा। सन्तानोत्पत्तिके बाद मैंने पत्नीका आपरेशन करवा दिया। यह सब उन्हीं बूढ़ी दादीकी प्रेरणाका फल था। उन्होंने जो मुझे सीख दी थि कि बड़ा परिवार दुःखका कारण होता है, उसका मुझपर गहरा असर हुआ था।

तबसे आजतक मैं परिवार-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नियोजनका कट्टर समर्थक और इस दिशामें लगातार प्रयास करता रहा हूँ। सरकारने जब प० बंगालमें परिवार नियोजनकी समिति गठित की तो मुझे भी उसका सदस्य मनोनीत किया गया। उन दिनों परिवार-नियोजनका बहुत प्रचार किया गया और काफी धन इसपर खर्च किया गया। लेकिन इसके अपेक्षित संतोष-जनक परिणाम नहीं निकले। मैंने प० बंगाल विधान-परिषद्का सदस्य बननेपर सदनमें इस विषयमें कई बार भाषण किये, फिर मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटीमें परिवार - नियोजनका विभाग खोला गया जिसमें एक ही वर्षमें १००० वन्ध्याकरण आपरेशन किये गये।

जब मैं राज्य-सभाका सदस्य चुना गया तो मैंने सदनमें और संसदीय कांग्रेस दलकी बैठकोंमें भी बार-बार परिवार - नियोजनकी वकालत की। वहाँ डा० चन्द्रशेखर और एक महिला सदस्य इस मुहिममें हमेशा मेरा साथ देते थे। राज्यसभामें मैंने एक गैर सरकारी विधेयक भी पेश किया जिसमें लड़कियोंके लिए विवाह आयु कम-से-कम २० वर्ष और लड़कोंके लिए कम-से-कम २३ वर्ष निर्धारित करनेका प्रावधान था। आयुके आँकड़े डॉ० चन्द्रशेखरने तैयार किये थे। लेकिन दुर्भाग्यसे तभी मेरा कार्यकाल समाप्त हो गया और फलतः उक्त विधेयक विषय-सूचीसे हटा दिया गया।

आज सौभाग्यसे परिवार नियो-जनकी आवश्यकता और उसके महत्त्वका बोध सभीको हो गया है तथा उस दिशामें जबर्दस्त प्रयास किये जा रहे हैं। सारे देशमें परिवार नियोजनके पक्षमें वातावरण बन गया है जिसका जनतापर भारी असर हो रहा है। सरकार राष्ट्रके भविष्यकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण इस अभियानको सफल बनानेके लिए कटिबद्ध हो गयी है, अतः इसकी सफलतामें अब कोई सन्देह नहीं रह गया है।

पिछले दो दशकोंमें भारतकी जनसंख्या लगभग दुगनी हो गयी है और वह यदि इसी गतिसे बढ़ती रही तो भविष्यमें स्थिति बेकाबू हो सकती है। अनुमान है कि इस रफ्तारसे जनसंख्या जो इस समय ६० करोड़ है, अगले १४ वर्षोंमें एक अरब और अगले ४० वर्षोंमें ८ अरबतक पहुँच जायेगी। भारतमें प्रतिवर्ष एक नया आस्ट्रेलिया जन्म लेता है। इसका परिणाम यह है कि देशकी समूची प्रगति जनसंख्या-वृद्धि खा जाती है और फलतः प्रगतिके फल आम जनताके रहन-सहनमें प्रतिफलित नहीं हो पाते हैं। देशमें आजादीके बादसे खाद्यान्न-उत्पादनमें ६० प्रतिशत वृद्धि हुई है, पर औसत भारतीयके हिस्सेमें अभी तक केवल ४२८.२ ग्राम

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्न व दाल ही पड़ती है। इसलिए जनसंख्या वृद्धिकी रोकथाम आज एक राष्ट्रीय समस्या बन गयी जिसे युद्धस्तरपर हल किये जानेकी जरूरत है।

राज्योंसे इन दिनों बन्ध्याकरण आपरेशनके जो आँकड़े प्राप्त हो रहे हैं, वे उत्साह-वर्धक हैं और विश्वास है कि हमको जन्मदर घटानेमें निश्चय ही सफलता मिलेगी।

सरकार-स्तरपर जो प्रयास हो रहे हैं वे सराहनीय हैं, पर लोगोंको व्यक्तिगत स्तरपर भी इसमें अपना योग देकर पुण्य-लाभ करना चाहिए। इस सन्दर्भमें हमको गांधीजीका स्मरण हो जाता है। वापू पद-यात्रासे जन-जागरण करते थे। आज संसद और विधानसभाके सदस्यों, प्रतिष्ठित नागरिकों, समाजसेवियों और राज-नीतिक पदाधिकारियोंको देशव्यापी पद-यात्राएँ करके परिवार-नियोजनका सन्देश देशके उन अन्धेरे कोनों तक पहुँचाना चाहिए जहाँ अभीतक ज्ञान-की प्रकाश-रेखा नहीं पहुँची है।

●

आज महारानी सीताजी कहाँ हैं ?

ईश्वरभक्तिमें अभिमानको स्थान नहीं मिल सकता। भगवान् श्रीकृष्ण जब द्वारिकामें थे, तब एक समय श्रीसत्यभामाजीको अपने सौन्दर्यका, सुदर्शन-चक्रको बलका तथा गरुड़को अपने वेगका वड़ा अभिमान हुआ था।

एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं अयोध्यापति रामचन्द्र बन गये, सत्यभामाजीने श्रीजानकीजीका रूप लिया और गरुड़ द्वारा सन्देश देकर मन्दराचलसे श्री हनुमान्‌जीको बुलवाया गया।

मनोवेगसे निकलते समय श्री हनुमानजीने गरुड़को पंख पकड़कर समुद्रमें फेंका। रास्तेमें प्रतिरोध करनेवाले चक्रको मुँहमें दबाया। श्रीरामचन्द्र भगवान्‌के रूपमें विराजते हुए श्रीकृष्ण भगवान्‌की ओर देखते हुए हनुमानजी बोले, 'आप तो त्रिभुवन सुन्दर हैं। लेकिन श्री जानकीमाता कहाँ हैं। उनके जगहपर यह कोई भी दासी बैठ गयी है, महाराज'। श्रीसत्यभामाजीका गर्व भी चूर हो गया।

—म० श्री०

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रोगका शौक

आपके शौक क्या हैं? कबूतरबाजी, तीतरबाजी, कुत्ते या घोड़े पालनेका शौक, पुरानी किताबें इकट्ठा करनेकी धुन या और कोई? वैसे आपका डाक्टर भी यहाँ सलाह देगा कि जिन्दगीमें कोई-न-कोई शौक तो होना ही चाहिए, नहीं तो सेवासे निवृत्त होनेके बाद जिन्दगी बोझ बन जाती है और खींचते नहीं बनती।

अपने डाक्टरकी सलाह मानकर लोगोंने कोई-न-कोई शौक पालना शुरू कर दिया। लेकिन, पश्चिमी विज्ञानकी विशेषता यह है कि यह वह कलकी बात नहीं सोचता। उसका तर्क तो यह है कि जो सामने है, पहले उसे सुलझाया जाय, कलकी कल देखी जायगी।

पश्चिमी विज्ञानको तरक्कीकी निशानी माननेवालोंने आँख मूँदकर वह सब किया जो उसने बताया। अब इसी विज्ञानने कहना शुरू कर दिया है कि कल जो कहा गया था, वह सब आज फैली बीमारियोंके लिए जिम्मेदार है, इसलिए कलके नुस्खेमें लिखे शौकको बन्द करो।

लंदनकी एक साप्ताहिक पत्रिकामें वैज्ञानिकोंने लिखा है कि अपनी कार, फर्नीचर, मकान आदिकी स्वयं मरम्मत करनेवाले, मूर्त्तिकला, चित्रकला, फोटोग्राफी या इसी प्रकारके रंगाई-पुताई-धुलाईके शौकवालोंको नाना प्रकारके चर्मरोग हो जाते है।

वैज्ञानिकोंने मोटे-तौरपर विभिन्न शौकोंसे होनेवाले रोगोंको 'औद्योगिक रोगोंकी श्रेणीमें रखा है, उनका कहना है कि इन शौकोंको पूरा करनेके लिए जो रंगरोगन आदि इस्तेमाल किये जाते हैं, उनमें कई विषाक्त पदार्थोंका मिश्रण होता है, जिनके स्पर्श और गन्धसे भीतरी और बाहरी रोग होते हैं।

घोड़े, कुत्ते, बिल्ली, तोता, कबूतर आदि पालनेवालोंको भी कई बीमारियाँ घेर लेती हैं और मछली पकड़नेवालोंको पाडु रोग हो जाता है। आधुनिक पश्चिमी संगीत सुननेके शौकीन बच्चे बहरे हो जाते हैं।

पत्रिकाने शौकसे होनेवाले रोगोंका विवरण देनेके अलावा पीड़ितोंके भयावह चित्र भी प्रस्तुत किये हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उसकी मन्शा शायद यही है कि लोग शौक करनेके खतरोंको समझें।

इधर भारतमें जहाँ यह कहा गया कि, हाथी और कुत्तेमें भी आत्माका निवास है, इसलिए उनके प्रति 'आत्मवत्' भाव रखो, वहाँ यह चेतावनी भी दी गयी कि 'खल परिहरीय स्वानकी नाईं।' विच्छूका मन्त्र न जाने, साँपके बिलमें हाथ डाले' की उक्ति काफी प्रसिद्ध है।

नागोंको गलेमें अपनी मालाकी भाँति धारण करनेवाले शिवने कालकूटको भी धारण कर रखा है। विषसे भी विषका उपचार होता है। आज किसी शौकको अपनेसे पूर्व भारतीय वैज्ञानिकोंने इस बातपर अधिक जोर दिया कि कल होनेवाले उसके दुष्परिणामोंको समझने और उनसे बचनेका उपाय कर लेना आवश्यक है।

भारतीयोंकी इसी विशेषताको स्वीकार करके पाश्चात्योंने कहा कि जहाँ उनके ज्ञानकी इति हो जाती है, वहाँसे भारतीय ज्ञानका अथ होता है।

प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकोंने जीवनको व्यस्त रखनेकी समस्याको समझा था। उनका मत रहा कि अनासक्ति ही सर्वश्रेष्ठ शौक है, क्योंकि इससे व्यक्ति सिर्फ अपने लिए नहीं बल्कि समूचे समाज और राष्ट्रके लिए जिन्दा रहता है।

पाश्चात्य ज्ञान एक व्यक्तिसे आगे नहीं बढ़ता। एककी खुशीके लिए वह सब सामान जुटानेपर जोर देता है। लेकिन, भारतीय विज्ञान एकसे अनेककी ओर जाता है। व्यक्तिको समष्टितक ले जाकर फिर उसे एक विराट्में मिला देता है। इस प्रकार एक ऐसी प्रक्रियाका आरम्भ हो जाता है जिसमें 'इति'के बाद 'अथ' अवश्यम्भावी है।

इस ज्ञानमें रोगका खतरा नहीं। लेकिन, पाश्चात्य ज्ञानका अथ और इति दोनों रोगमय हैं। वहाँ आप तबतक सफल नहीं जबतक आपके पेटमें दो-चार अन्तरावरण नहीं और दिलके मरीज बनकर आप मंचपर नहीं खड़े होते। ट्रैंक्विलाइजर लिये बिना नींद न आना, पश्चिमी नपनेसे बड़प्पनकी निशानी है और इन गोलियोंकी अति जीवनके अन्तकी भी।

(न० भा० टा० २६ दि० '७६)

●

यदि तुम दृढ़तासे लगे रहो तो जो स्थायी भक्ति और सिद्धि तुम चाहते हो उसे प्राप्त करनेमें तुम विफल नहीं होओगे। किन्तु तुम्हें यह सीखना होगा कि श्रीकृष्णपर पूरी तरह निर्भर करो : जब वे तुम्हारी सब तैयारी देख लें और जब कि समय आये तब तुम्हें भक्ति दें। —श्री अरविन्द

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ तत् सत्

श्री विजयशंकर कानजी पट्टणी, बी० ए०

ॐ तत् सत् । स्वतः अस्ति—स्वयं है । वह सत् है । वह 'अस्ति' है, 'भवति' नहीं । 'भवति' अर्थात् होना; क्रियाका परिणाम है, वह होता है आकृतियोंका, रूपोंका । सत्का नहीं होता । आकृति माने क्रियाकी कृति । सत् क्रिया-कृत नहीं है । वह अकृत है, कृतिरूप नहीं । स्वयं विद्यमान है, अकारण है, अनादि है । सत् क्रियाका फल नहीं है, कर्मशेष नहीं है, उत्पाद्य भी नहीं है ।

सत् 'होकर' नहीं होता, वह तो 'है' ही । सत् पहले कभी 'हुआ' नहीं है । सत् केवल सत् ही है । सदैव हो है । 'भवति' अर्थात् होनेका आभास । वह यथार्थ नहीं है । 'भवति'का अर्थ ही है वह नहीं है । वह सचमुच पैदा नहीं होता है । कोइ भी अभूतपूर्व वस्तु असद् भावसे सद्भावको प्राप्त नहीं होती ।

तब 'भवति' माने क्या होता है ? अव्यक्त व्यक्त होता है । अदृश्य दृश्य होता है, अगोचर गोचर होता है । अदृश्यरूप एवं अदृष्टपूर्व कोई भाव रूपान्तरको प्राप्त होकर दृश्यरूप होकर दृष्टिगत होनेपर उद्भूत-सा ज्ञात होता है । वह रूप-परिवर्तन है, होना नहीं । वह होना नहीं है, आविर्भाव है । अनादि भूत भावका ही आविर्भाव होता है । अथवा तिरोभूत भावका पुनः आविर्भाव होता है अभाव भावपनको प्राप्त नहीं होता । प्रकट होनेका नाम कृति नहीं है । आकृति-का परिवर्तन होता है, होता नहीं है । क्रिया परिवर्तन करता है, उत्पन्न नहीं करता । दृष्टिको अपेक्षासे ही क्रिया होती है और क्रियाके परिणाम भी होते हैं । वस्तुमें होना नहीं है, वह स्वयं है ।

संयोग-वियोग क्रियाके परिणाम हैं । आकृति एवं संघात भी वैसे ही हैं । वे वस्तुका उत्पत्तिके सूचक नहीं हैं । 'जनि' धातुका अर्थ है—प्रादुर्भाव, अभावसे भावकी प्राप्ति नहीं । जन्म लेना माने आविर्भूत होना, अभावसे भावकी प्राप्ति नहीं ।

'नश्' धातु, जिसका अर्थ 'नाश' होता है, 'अदर्शन'के अर्थमें है 'नाश'-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

का अर्थ अभावकी प्राप्ति नहीं है। जो नष्ट होता है वह अदृष्ट हो जाता है, तिरोभूत हो जाता है, उसका अभाव नहीं होता। वह शून्यमें विलीन नहीं होता। प्रादुर्भाव-तिरोभाव, दर्शन-अदर्शन दृश्योंका, आभासोंका होता है, वस्तुका नहीं। दीखते हैं, भासते हैं कौन ? गुण, क्रिया, क्रियाके परिणाम, आकृतियाँ और विकृतियाँ। वस्तु तथा द्रव्य—न दीखते हैं, न भासते हैं।

द्रव्य एवं वस्तु प्रत्यक्ष नहीं हैं, वे इन्द्रियोंके विषय नहीं हैं। इन्द्रिय-गण शब्द-स्पर्श-रूप-रस आदि गुणोंको ही पहचानते हैं। इनके अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते। द्रव्य दृश्य हैं—यह बात केवल कल्पना है। यह प्रत्यक्ष दर्शन नहीं है।

यदि यह बात मान लें कि करण जानते हैं तो वे अपने अनुरूप गुणको ही जानते हैं। वे गुणोंसे पृथग्भूत, गुणोंमें अन्वित द्रव्यको भला कैसे जान सकते हैं ? मनने गुण एवं क्रियाओं-के अधिकरण-रूपसे तथा आकृतियोंके उपादान रूपसे द्रव्यकी कल्पना की है। आभासोंके अधिष्ठान रूपसे वस्तुकी कल्पना की गयी है किसी-किसीने उस वस्तुको शून्य माना है और किसीने इन्द्रिय एवं अन्त:करणका अविषय माना है। वस्तुके सम्बन्धमें यही दो प्रकारकी कल्पनाएँ उजागर हैं। शून्यमें प्रतीति सम्भव नहीं है। अतएव इन्द्रिय एवं अन्त:करणको अविषय अतीन्द्रिय अधिकरणस्वरूप जो वस्तु है वही सत् है। केवल वही सत् हैं। ॐ तत् सत्। वही सत् है। केवल वही सत् है। —म० श्री०

हम जैसे हैं वैसे ही ठीक हैं

श्रीरामचन्द्रजीके स्पर्शसे अहिल्योद्धार होनेके पश्चात् यह प्रसंग घटित हुआ। दण्डकारण्यमें श्रीजानकीजी प्रभु रामचन्द्रजीकी खूब सेवा करती थीं। उनके स्नान-सन्ध्या-भोजन आदिकी सब व्यवस्था करतीं।

यह देखकर दण्डकारण्यवासी तपस्वियोंके मनमें ब्याह करनेका संकल्प उठा। प्रभु श्रीरामचन्द्रजी उनके लिए शिलाओंमें-से स्त्रियाँ उत्पन्न करेंगे, यह उनका विश्वास था।

साधुओंका यह संकल्प सुनकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी चिन्तित हो उठे। उन्होंने योगमायाको आदेश देकर रावणको जानकी-हरणकी बुद्धि दिला दी।

पश्चात् जानकी-हरण हुआ। श्रीरामचन्द्रजीका शोक देखकर उन तपस्वियोंने ब्याहका संकल्प छोड़ दिया। 'हम जो अकेले हैं—वैसे ही ठीक हैं' इस धारणासे वे अपनी तपश्चर्यामें फिरसे मग्न हो गये।

—म० श्री०

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

माँका दूध बच्चेके तन-मनके लिए अमृत और माँके लिए कैंसरसे बचाव

सुनीला आनन्द

ब्रिटेनमें कुछ मास पूर्व स्तनपानपर एक गोष्ठी हुई, जिसमें विशेषज्ञों और डाक्टरोंकी आम राय यह थी कि माँका दूध शिशुओंके लिए सर्वोत्तम आहार है।

तबसे यूरोप और अमेरिकामें माँका दूध चर्चाका विषय बना हुआ है। शिशुओंके लिए कृत्रिम खान-पानके विरुद्ध चेतावनी दी जा रही है। इस बारेमें विकासशील देशोंके उदाहरण दिये जा रहे हैं। सब प्रकारकी वैज्ञानिक देखभालके बावजूद धनो देशोंके बहुत-से नवजात शिशु पेचिश, खांसी, जुकाम वगैरहके शिकार रहते हैं जब कि गरीब देशके 'गन्दे' बच्चे सख्त सर्दी और सख्त गर्मीमें भी पेटके रोगों तथा अन्य ऐसी ही बीमारियोंसे बचे रहते हैं तथा उनमें अधिक जीवन-शक्ति पायी जाती है।

भारत तथा तीसरी दुनियाके अन्य देश हजारों वर्षसे माँके दूधके महत्त्वको जानते हैं। यहाँके सपूतोंने समय-समय पर माँके दूधकी लाज रखी है। लेकिन तथाकथित आधुनिक डॉक्टरोंको इसके लिए चूहों और बिल्लियोंपर परीक्षण करने पड़े हैं।

पश्चिमी डॉक्टरों और आहार-विशेषज्ञोंका कहना है कि माँका दूध पीनेवाला बच्चा उस बच्चेसे कहीं ज्यादा खुश रहता है जिसे दुग्ध-चूर्ण या गाय-भैंसके दूधपर रखा गया हो।

यही नहीं, स्तनपानका प्रभाव माँके तन-मनपर भी पड़ता है और यह असर जीवनभर रहता है, बच्चोंको अपना दूध पिलानेवाली स्त्रियोंके जीवनमें प्रौढावस्थामें मानसिक तनाव और दबाव कम रहता है, यहाँतक कहा गया है कि स्तन-पान करानेवाली स्त्रियोंको छातीका कैंसर नहीं होता।

अबतक ऐसी भी धारणा थी कि गायका दूध शिशुओंके लिए सर्वोत्तम आहार है। अब कहा जा रहा है कि गायके दूध या दुग्धचुर्णमें नमककी मात्रा बहुत अधिक होती है जो छोटे बच्चोंके लिए बहुत बार जानलेवा साबित हो सकती है।

और फिर पशु कई तरहके रोगोंसे ग्रसित हो सकते हैं। अब गायके दूधको शिशुओंकी मौतकी एक बड़ी वजह बताया जा रहा है। ब्रिटेनकी तुलनामें यूनानमें नवजात शिशु कम मरते हैं।

[माँका दूध......

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यूनानमें आज भी अधिसंख्य बच्चे माँके दूधपर पलते है।

बोतलसे दूध पिलानेमें कई नुकसान हैं। पहली बात तो यह है कि बोतलको और निप्पलको हर बार उबालना और बहुत सफाईसे इस्तेमाल करना बहुत जरूरी है। कितनी माताएँ ऐसा करती हैं? फिर, कृत्रिम दुग्धपानसे माँ और बच्चेके बीच एक मनोवैज्ञानिक दूरी पैदा हो जाती है। जो आगे चलकर बच्चेमें भावात्मक असुरक्षाके रूपमें उभरती है।

नार्थ राइन (पश्चिम जर्मनी) के राष्ट्रीय स्वास्थ्य दन्त-संघके एक प्रवक्ताके कथनानुसार बोतलके दूधपर पलनेवाले बच्चोंके दाँत जल्दी खराब हो जाते हैं। उनमें कीड़ा लग जाता है।

बोतलसे ज्यादा दिनोंतक दूध पीनेवाले बच्चे प्रायः मीठा दूध पीते हैं। यह मिठास उनके दाँतोंको, दाँत निकलनेसे पहले ही खराब कर देती है।

अपनी पुस्तक 'न्यूट्रीशन फैक्टर'में एलनवर्गने बोतलके दूधको पोलियो तथा अन्य अनेक रोगोंकी जड़ तो बताया ही है। उन्होंने इस सम्बन्धमें आर्थिक पहलूपर भी प्रकाश डाला है।

वर्गके अनुसार माँका दूध छोटे बच्चोंके तन और मन दोनोंके लिए सबसे ज्यादा पुष्टिकर है। फिर भी मुफ्तके इस दूधका उपयोग कम-से-कम होता जा रहा है। आर्थिक रूपसे यह राष्ट्रीय क्षति भी है। इस सम्बन्धमें चिलीकी मिसाल दी गयी है जहाँ बीस साल पहले ९५ प्रतिशत माताएँ एक वर्षसे अधिक समयतक स्तन-पान कराती थीं। अब यह प्रतिशत छह रह गया है। इसमें-से भी २० प्रतिशत माताएँ सिर्फ दो महीनेतक ही अपना दूध बच्चोंको पिलाती हैं। एक अनुमानके अनुसार चिलीकी माताओंके ९३ हजार टन दूधमें-से केवल १५ हजार टन ही दूध बच्चोंको पिलाया जा रहा है।

माँका दूध अधिक पौष्टिक और कम खर्चीला है। वर्गने इस बातपर सन्तोष व्यक्त किया है कि भारतके गाँव आज भी बोतलके दूधसे बचे हुए हैं।

स्तन-पान परिवार-नियोजनमें भी सहायक हो सकता है। अपना दूध पिलानेवाली स्त्रीका 'मासिक धर्म' देरसे होता है। कभी-कभी ढाईसे छह महीनेतक नहीं होता। 'नयी हवा' से पहले भारतमें स्त्रियाँ इसीलिए दो-तीन बच्चोंको अपना दूध पिलाती थीं। इस दौरान 'गृहस्थ-धर्म' की भी मनाही थी।

—न० भा० टा० २७-८-७६

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जब चूहोंने शत्रुको हराया

शिवरैना

काफी पहलेकी बात है। सीरियाके शासक सीनेकर्षके खूंखार सैनिकोंकी विशाल सेनाने मिस्रपर चढ़ाई कर दी। ये सैनिक उन पर्वतोंसे आये थे, जहाँ चट्टानोंके सिवा कुछ न था और न कुछ पैदा होता था। ये हर वक्त लड़ने-मरनेके लिए तैयार रहते थे। सीनेकर्षको यह बात मालूम थी कि मिस्री शासक बड़े समृद्ध हैं, उनके महलोंमें अजीबो-गरीब खजानोंके तहखाने हैं, जहाँ सोने और जवाहरातके ढेर चमकते रहते हैं। सीनेकर्षकी सेनाके पास भारी-भरकम ढालें, बड़ी-बड़ी कमानें और तीखे तीर थे।

मिस्रमें शाह सैथास यह खबर सुनकर चिन्तित हुआ कि सीरियावाले दिन-प्रतिदिन मिस्रके निकट आते जा रहे हैं। उसे सीनेकर्षकी नीयतका पता था। वह जानता था कि सीनेकर्ष मिस्रको लूटने और सारी सम्पत्ति सीरिया ले जानेके लिए आ रहा है। आखिर काफी सोच-विचारके बाद शाह सैथानने सीरियाकी सेनाके साथ युद्ध करनेका निर्णय किया। लेकिन युद्धके लिए शहरसे रवाना होनेसे पूर्व अपने सेनापतियों सहित वह अमीन देवताकी समाधिपर गया, जहाँ मिस्रवासी प्रार्थना किया करते थे। प्रार्थनाके बाद सैथास और उसके सैनिक शहरसे निकलकर पूर्वकी ओर चल पड़े।

अन्तमें दोनों सेनाएँ आमने-सामने हुईं। लेकिन अब शाम हो चुकी थी और सीरियावाले अपने शिविर लगा रहे थे। शामके झुटपुटेमें वे शिविर लगाते हुए युद्धके गीत गा-गाकर अपनी शक्ति और सत्तापर इतरा रहे थे। उन्होंने मिस्री सैनिकोंको आते देखा तो और भी उच्च स्वरोंसे गाने लगे। अपने मुकाबलेमें एक संक्षिप्त-सी मिस्री सेना देखकर वे जोर-जोरसे कहकहे लगाने लगे।

शाह सैथासने अपने सैनिकोंको भी शिविर लगानेका आदेश दिया। लेकिन उसके सैनिकोंने कोई गीत नहीं गाया। उन्हें रातभर नींद भी न आयी। उन्हें अपनी प्रार्थनापर विश्वास था, लेकिन सुबहके खयालसे आतंकके मारे उनके दिल काँप उठते थे।

सीरियावालोंके शिविरोंके निकट चारों ओर असंख्य चूहे रहते थे। रातका अन्धकार फैलते ही वे अपने बिलोंसे भोजनकी खोजमें निकले। वे चूहे बहुत ही भूखे थे। उन्होंने अपनी नन्हीं-नन्हीं नाकोंको निकोड़ा और सूंघना शुरू किया। उन्हें बड़ी अच्छी मनपसन्द सुगन्ध आयी। उधर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सीरियाके सिपाही आधीरात गये अपने नजदीक ढालें कमानें और तीर रखकर सुबहके युद्धके लिए तैयारी करके सो गये। ये भूखे चूहे उन सोते हुए बलिष्ठ सैनिकोंके बीच जा पहुंचे। देखते-देखते वे सैनिकोंके हथियारोंपर चढ़ गये। हर ढालकी पीठपर हाथमें पकड़नेके लिए चमड़ेका तस्मा लगा हुआ था, और हर कमान-में बढ़िया चमड़ेकी डोरी थी, जिसपर रखकर तीर चलाया जाता है। चूहोंने उन ढालोंके तस्मे काट डाले, कमानोंकी तांते काट दीं। हर चूहेके लिए वह रात जैसे दावतकी रात थी। उन्होंने हथियारोंके चमड़ेको इस तेजीसे कुतरा और काटा कि जरा-सी देरमें सारे हथियार बेकार हो गये। यह सबकुछ करनेके बाद वे फिर अपने निकटवर्ती बिलोंमें जा घुसे।

सुबह होते ही मिस्री सिपाही अपने शिविर-क्षेत्रमें खामोशीके साथ अपने तीरोंको देखा, अपनी कमानोंपर चिल्ले चढ़ाये, मोर्चाबन्दी की और अपने सेनापतियोंके आदेशकी प्रतीक्षा करने लगे।

थोड़ी देर बाद शाह सैथासने अपने सैनिकोंको अपने साथ आगे बढ़नेका आदेश दिया। युद्धका नारा लगाकर मिस्री सैनिकोंने शत्रु-सेनापर आक्रमण कर दिया।

सीरियावाले पहले ही तैयार थे। वे पूरे जोशसे एकदम उठे और अपनी ढालें उठानेके लिए दौड़े, लेकिन यह क्या! वे अपनी ढालोंको अपनी बाहोंपर न लटका सके, क्योंकि उनके तस्मे टूटे और कुतरे हुए थे। उधर हाल यह था कि मिस्री सैनिकोंकी ओरसे विष-बुझे तीरोंकी उनपर निरन्तर वर्षा हो रही थी। उन्होंने भी क्रोधमें आकर जवाबी आक्रमणके लिए अपने तीर निकाले। लेकिन उनकी कमानोंके चिल्ले भी कुतरे हुए और बेकार थे। अब तो सीरियावाले बहुत घबराये। मिस्री सैनिकोंका सामना कर पाना अब उनके लिए लगभग असम्भव था। उन्होंने समर-भूमिसे पीठ फेरी और जान छोड़कर भाग खड़े हुए। स्वयं सीनकर्ष कठिनतासे जान बचानेमें सफल हुआ।

जब शाह सैथास सीरियावालोंके शिविरोंकी ओर आया, तो उसने सीरियाई सैनिकों द्वारा पीछे छोड़े गये हथियार देखे। उसने उनकी ढालोंके मध्य एक नन्हीं-सी चुहियाको चमड़ेके तस्मेमें बड़े-बड़े छेद करते देखा। शेष हथियारोंकी दशा देखकर शाह पूरा मामला भाँप गया।

मिस्र शासकने अपनी राजधानीमें पहुँचते ही अमीन देवताकी एक विशाल प्रतिमा बनवायी। जिसके ऊपर उठे हाथमें एक चूहा था। इसप्रतिमाके नीचे आज भी ये शब्द अंकित हैं:

'मुझे देखो और देवताओंका आदर करना सीखो!' (न.भा.टा. २९-९-७६)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होम्योपैथी

डॉ० श्रीलक्ष्मी नारायण मंगल

'चिकित्सा' एक ऐसी वाटिका है जिसमें विभिन्न भाँतिकी पद्धतियोंके फूल विकसित हो खिल गये हैं, एक उच्चतम आदर्श मानवकी शारीरिक एवं नीरोगताके हेतु हमें आज स्मृति झिंझोड़ती है एक महा-मानव 'फ्रेड्रिक सेमुअल हैनीमन'की जिनका हृदय तड़पड़ाया दीन-दुखियोंके कष्ट निवारण-हेतु एवं सम्भवतः अनजाने ही जिन्होंने पुनर्जन्म-सा दे दिया भारतीय-चिकित्साके एक पुरातन तथा भूले मन्त्रको कि—'विषस्य विषमौषधम्'

'हैनीमन'का श्रीहनुमान्-सा सेवा-भरा जीवन होम्योपैथीको सैद्धान्तिक एवं क्रियात्मक रूप देनेमें व्यतीत हुआ। आपकी घोषणा थी कि **समान तत्त्व-समान तत्त्वोंकी चिकित्सा करते हैं।** 'सिमिलिया सिमिलिबस क्यूरेन्टर'का सूत्र आपने अथक प्रयोगों, अभ्यासों एवं तथ्योंके आधारपर चिकित्सा-जगत्के सामने उपहार-स्वरूप सजा दिया।

१० अप्रैल १७५५ की पुनीत वेलामें, अपना सम्पूर्ण जीवन पीड़ित मानवताके हेतु होम देने, आप जर्मनीके सैक्सनी प्रदेशके माइसेन ग्राममें जन्मे। चौबीस वर्षकी अल्पायुमें आपने एम० डी० उपाधि प्राप्त की तथा फिर ड्रेसडेन अस्पतालके प्रधान चिकित्सक पदपर काम करते रहे।

१७९० में कालेन साहबका मैटीरिया-मैडिकाको आंग्लभाषासे जर्मन भाषामें अनूदित करते समय (Cinchona) (सिनकोना)की व्याख्यासे आप सन्तुष्ट न हुए, इसके बाद इस दवाकी विरुद्ध-लक्षणशीलतापर गहरा चिन्तन करते-करते आपके मस्तिष्कमें यह तथ्य प्रकाशित हुआ कि भले-चंगे शरीरवाले मनुष्यको 'सिनकोना' खिलानेसे जाड़ा-बुखार हो जाता है इसलिए ही 'सिनकोना' जाड़ा-बुखारको लाभ पहुँचाता है, आपने स्वयंको ही परीक्षणोंमें डुबा दिया और पाया कि यह सचमुच मलेरिया पैदा करता है, अब आपके क्रियाशील मस्तिष्कने विचारा कि दूसरी ओषधियोंमें भी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यह शक्ति क्रियाशील हो सकती है और आप परीक्षाणोंमें जुट गये।

छह वर्षके बाद १७९६ में "हुफेलेंड्स-जरनल"में—जो उस समय चिक्त्सा - जगत्में सर्वश्रेष्ठ पत्रिका मानी जाती थी—एक लेख आपका छपा एवं चिकित्सा-जगत्में एक हलचल मच गयी। तथा बहुत अधिक विरोध हुआ पर साधना चलती रही।

१८०५ में "फ्रैग्मेंटा डि वाइरिबस" लैटिन-भाषामें छपी, इसमें इन्हीं बातोंका खुलासा आपने किया कि भले-चंगे शरीरमें २७ दवाओंके सेवनसे क्या-क्या लक्षण उभरे, यही होम्योपैथिक जगत्की सर्वप्रथम 'मैटीरिया-मैडिका' है।

१८१० में "आर्गॅनन" छपा जो हमें गीता-भागवतकी तरह प्रेरणा देता है, अठारह साल बाद अनुभवोंका ढेर 'क्रानिक डिसीजेज' पुस्तक छपी और अब तो आपका यश विदेशोंमें भी फैलने लगा।

१८४३ की दो जुलाईको यह कर्मयोगी नवासी वर्षकी अवस्थामें चिकित्सा-जगत्में एक अक्षय कीर्तिमान स्थापितकर अमर हो गया। मोनमार्टमें सर्वप्रथम इस "पीड़ित मानवताके बन्धु"का शव दफनाया गया फिर १८९९ में उसे मेरे-ला-शेनमें दफनाया, इस अन्तिम स्थानमें आपकी समाधि-शिला तथा वाशिंगटनमें आपका स्मृति स्थान आपके मित्रों तथा शिष्योंकी प्रीति एवं श्रद्धाके प्रतीकरूपमें खड़ा आज भी अनेकोंको दीनबन्धु होनेकी प्रेरणा दे रहा है।

भारतमें होम्योपैथीका आगमन

१८३९ में महाराजा रणजीतसिंह जब असाध्य रोगसे पीड़ित थे तब हैनीमन महोदयके प्रख्यात शिष्य डा० होनिग्वेरगेरने जर्मनी आकर उनकी चिकित्सा होम्योपैथी प्रणालीसे की थी।

अंग्रेजोंके भारतमें आनेपर कुछ अंग्रेज मिशनरीजने भी बंगाल तथा दक्षिण भारतमें होम्योपैथी द्वारा सेवा देकर इसके प्रचारमें वृद्धिकी, धीरे-धीरे इस चिकित्सा-पद्धतिका प्रचार जनतामें निष्काम चिकित्सकों एवं धर्मार्थ चिकित्सकों द्वारा फैला तथा इसने एक स्वतन्त्र चिकित्सा-पद्धतिके रूपमें समाजमें अपना निश्चित तथा सम्मान भरा स्थान बना लिया।

●

जो मनुष्य अपने क्रोधको अपने ही ऊपर झेल लेता है, वह दूसरोंके क्रोधसे बच जाता है।

—सुकरात

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

The Bactericidal Action of the Water of the Ganges & Jumna River's on Cholera Microbes.

E. Hanbury Hankin, M. A Sc. D.

(Cont.)

To give every possible advantage to the cholera microbe in the following experiments; a culture was employed that had been made in sterilised Jumna water to which peptone and a trace of alkali had been added. This medium was inculated two or three days before the actual experiment, a fresh culture in the medium being made daily. By this means an attempt was made to acclimatise the microb to living in Jumna waters. In this way it was hoped to avoid any ill effects that might possibly (but not probably) accrue from a brusque passage from a rich culture medium to a poor one like river water. The cholera microbe is not very sensitive to such changes. The enteric bacillus is more so as has been shown by Haffkine (Annales d' l' Institute Pasteur, 1890, Vol. IV; page 363). Nevertheless this bacillus is not killed by transference to Jumna water under laboratory conditions, as proved by the following experiments :—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Number of colonies

after :—	0	1	2	3	4	24 hours
B. Typhi acclimatised in Bouillon and then placed in :						
Well water	500	100	100	150	100	20000
Tap water	250	50	100	50	50	15000
B. Typhi acclimatised in water and then placed in :						
Well water	800	600	100	200	250	50000
Tap water	900	100	200	150	100	90000

The enteric bacillus used in these experiments had been acclimatised by placing it in bouillon or water three days before and by making fresh cultures in these media daily. The tap water is derived from the Jumna, as already explained, and ordinarily exercises a bactericidal action on the cholera microbes.

The effect of heating on Ganges water has been described in an earlier paragraph. The following experiment shows the effect of heating on Jumna water. The cholera used in this test was Haffkine's cholera vaccine.

Number of colonies

after :—	0	1	2	3	4	25	49 hours
Water of Jumna filtered	2500	1500	1000	5000	0	0	0
—do—	5000	4000	3000	3000	2000	0	0
Jumna heated & filtered	5000	4000	6000	5000	6000	10000	36000
Jumna heated	6000	5000	4500	4000	4000	3000	8000

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

The Haffkine's cholera vaccine used in the above experimen was of non-Indian origin. It was necessary to find out whether the waters of the Ganges and Jumna would have the same action on microbes of cholera from an Indian source. In order to test this point, a microbe was used that had been derived from a cholera epidemic in Bellary (Madras Presidency). The following results were obtained :—

	Number of Colonies after					
Hours	0	1	2	3	4	25
Bellary cholera in :—						
Jumna filtered	8000	4000	3000	100	0	0
—do—	6000	5000	1500	0	0	0
—do—	9000	5000	1000	160	0	0
Tap water filtered	7000	1200	100	0	0	0
—do—	8000	1000	200	0	0	0
Ganges water filtered	8000	6000	6000	8000	12000	21000
—do—	6500	7000	7000	1000	12000	24000
Haffkine's vaccine in :—						
Jumna filtered	10000	3000	150	0	0	0
—do—	8000	2000	100	50	0	0
—do—	10000	1500	150	100	0	0
Tap water	7500	3000	150	50	0	0
—do—	7000	4000	100	0	0	0
Ganges filtered	9000	3000	1250	4000	2000	20000
—do—	8000	5000	4000	2500	3000	25000
Well water as control :—						
Bellary cholera	7000	8000	10000	10000	20000	18000
—do—	8000	10000	11000	10000	16000	16000
Haffkine's vaccine	9000	8000	3000	4000	9000	28000
—do—	8000	8000	2500	2000	6000	25000

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

In the above experiment Jumna water killed cholera microbes that were put into it whether taken directly from the river or whether it had been submitted to sand filtration at the Municipal Waterworks. The result was the same on microbes of cholera that came originally from Tonkin and on cholera microbes obtained from Bellary. On the contrary Ganges water in this case was destitute of bactericidal power: In order to avoid a possible source of error, all the testtubes used to contain the different samples of water submitted to the test were new ones recently arrived from Europe which had been washed with tap water and had no other treatment. This precaution was taken in many of my experiments though no positive evidence existed that it was necessary.

In yet another experiment Ganges water showed itself innocuous to the cholera microbe. My belief is that this result was due to the fact that before arriving in my laboratory it had to undergo a long railway journey and that 50 to 60 hours elapsed between the time of having its been taken from the river and its being used in these experiments. A reason for this belief is furnished by the following experiment in which Jumna water on keeping practically lost its action on the cholera microbe. The specimens described as 'kept' had been placed in a receptacle for several hours before the experiment :

	Numbers of colonies after						
	0	1	2	3	4	29	53 hrs.
A. Water kept in bottle							
1) Tap filtered	3000	1800	15000	15000	1800	7000	18000
2) „ boiled	3600	3000	800	4000	750	10000	22000
B. Water kept in tin							
1) Tap filtered	3000	1300	1600	1000	700	24000	8000
2) „ boiled	2900	3200	2800	3000	3000	36000	30000

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

C. Fresh Samples :

1) Tap filtered	4000	15000	750	250	50	0	0
2) ,, boiled	4000	4000	5000	5000	5000	6000	18000

As a criticism of the foregoing experiments it might be suggested that possibly the microbes had not been actually killed by the Ganges and Jumna waters but merely so changed that they could no longer from colonies in the agar-agar jelly used in the tests. To obviate this objection, on several occasions peptone and alkali were added, in suitable amounts, to the apparently sterile mixture of Jumna water cholera microbes, at intervals of 5 to 25 hours. Previously it had been found that such addition of peptone and alkali completely removes from Jumna water all its harmful action on the cholera microbe and, on the other hand, the solution of peptone is the best culture medium known for this microbe. Since the testtubes of Jumna water thus treated remained sterile, we have an adequate proof that the cholera microbes previously added had been really killed. These test tubes two or three days later were inoculated with cholera and then produced good cultures, The medium therefore was favourable.

It has been shown above that Jumna water loses its bactericidal power on heating. One may ask, therefore, whether the bectericidal substance is destroyed by heat or whether it is a volatile substance that is driven off by boiling. To test between these alternatives, Jumna water was heated in hermetically sealed tubes, under such conditions it should lose its action on cholera if the bactericidal substance is one destroyed by heat and it should retain its activity if it is due to a volatile substance which is unable to escape from the sealed tube,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

provided that latter is only opened when cold. That the latter aternative is the case is shown by the following experiment :—

Water of :	Number of colonies after hours 0	1	2	3	4	5	24	48
Jumna heated in hermetically sealed tube	2100	150	50	0	0	0	0	0
—do—	1500	50	0	0	0	0	0	0
Jumna filtered	1000	450	300	350	50	0	0	0
Jumna heated in open tube	1800	1000	1250	600	1900	1500	3800	2500
Well water filtered	1000	800	500	750	800	900	1800	1000

A similar result was obtained in the following experiment :

Water of	0	1	2	3	4	24
Jumna heated in closed tube	4200	1100	0	0	0	0
—do—	3500	100	0	0	0	0
Jumna heated in open tube	4000	3500	5000	4500	5000	22000
Jumna heated in open platinum dish	5000	3750	4000	5000	4500	3000
Distilled water	4500	4000	6000	5500	200	2000
Jumna filtered	4200	800	0	0	0	0

These two experiments show that Jumna water heated in closed vessels remains capable of killing cholera microbes and that it loses this power when heated in a vessel closed by cotton wool or in a shallow platinum dish.

In the second of these experiments the water had been obtained at Kailasi Ghat a place situated about 22 miles (by river) above Agra. Thus it is not only in the neighbourhood of the town that the bactericidal power is manifest, Further

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

my experiments have been carried out at all times of the year except during the rains, thus proving that the bactericidal action on cholera is not merely an occasional phenomenon.

During the hot weather the whole of the Jumna river water at a point some 200 miles above Agra and a few miles below Delhi, is deflected into the Agra-Delhi canal. The joints of the dam by which this is done are caulked so that there is no doubt that the deflection is complete. This procedure does not result in the river drying up. Subsoil water appears in the bed of the river owing to the fall in the level of the latter during its course and suffices to maintain a slow current. Under these conditions the water shows the same bactericidal power as it does when the water is mainly derived from melting of the snow on the Himalayas. The subsoil water that is found in wells and when in wells, as already shown, it has no bactericidal powers. The antiseptic property that the river water ordinarily shows appears, therefore, either to be formed in the river or received by it in situ. The same substance appears to be present in Ganges water. It ls improbable in the highest degree that it exists in mountain streams in the Himalayas or ın rivers in other parts of India whose waters are known to be capable of transmitting the infection.

It appeared to me to be or importance to learn whether Jumna water had the same bactericidal action when collected below and above the town of Agra. It also appeared to be worth testing whether the practice of throwing cremated or partially cremated corpses into the river had any effect on its bactericidal power. The following experiment furnishes an answer to these question :—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

No. of colonies after :

Water of :	0	1	2	3	6·5	21	45 hours
Jumna from above the town	1200	200	0	0	0	0	0
Jumna from below the town	1500	0	0	0	0	0	0
Jumna from below the town & near a floating corpse	1250	50	0	0	0	0	0
—do—	2000	500	0	0	0	0	0
Jumna from above town heated	1250	1200	0	0	0	0	0
Jumna below town heated	1000	2000	0	0	0	0	0
Well water heated	1200	1250	1700	1200	1500	3000	16000

Thus in this experiment no proof could be obtained that either the impurities coming from town drains or substances that might be derived from half carbonised corpses had any effect on the bactericidal action of the water on cholera microbes.

Although the scientific interest of the above results may seem to be limited by the fact that the nature of the bactericidal substance is, as yet, undetermined, the experiments are of interest in that they serve to explain why in India cholera is not carried downstream by the Ganges and similarly constituted rivers. Practical applications of the above results at once suggest themselves. For instance pilgrims to sacred places on the banks of the Ganges and Jumna might with advantage be advised to drink the river water and to avoid that of wells. This, no doubt, would be a welcome ordinance as Hindus regard the water of these rivers as sacred and also as beneficial to health.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

P. S.—The nature of the bactericidal substance in Ganges and Jumna water was obscure at the time the above paper was written. At the present day a plausible suggestion can be put forward as to its nature. It is now known that hydrogen peroxide—a powerful antiseptic and oxidising substance—is formed whenever water containing salts evaporates in the presence of sunlight, The self-purifying power possessed by large rivers is probably largely due to peroxide formed in this way. In most rivers so much organic matter is present that the peroxide is rapidly destroyed. In the case of the Ganges and Jmuna water, water weeds are practically absent, possibly owing to some action of the micaceous silt suspended in their water. Other forms of vegetable pollution, as described above, are only present in minute amounts. Hence the peroxidc that is formed by the action of sunlignt on the water flowing often in shallow layers, is able to concentrate its action on the microbes that reach these rivers. Thus may be explained both the remarkably small numbers of microbes usually found in the water of these rivers and also the special action of such waters on the microbe of cholera.

The late Dr. Pestonjee Ghadially, when working in the Agra laboratory, attempted to test this suggestion by trying whether the bactericidal power of Jumna water was removed by substance that destroy peroxide. It is known that permanganate and peroxide, when mixed, mutually destroy one another. He commenced with this substance and found that the addition of a minute amount of permanganate, an amount far too small to give any appreciable colour to the water, completely removes the bactericidal action on the microbe of cholera. Unfortunately Dr. Ghadially was unable to proceed further in this research owing to his transference from Agra.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

The Power of Divine Grace

By : N. Sivasubrahmanya Sastri,
Rama Bakthi siddanthaSangam, Calcutta

Accord Vedas, Sastras and Puranas, there are many ways to attain Immortality (liberation from the turmoil of birth and death) or one-ness with the Reality such as Gnana (Knowledge), Bakthi (Devotion or loving service to God or Guru), Yoga (Control of Mind and Vital Airs), Tapas (askesis), Vrata (austerities) etc. Everyone of them is true and suited to a particular person at a particular Time. However much one may hear, contemplate. read, understand and expound scriptures, his mind will continue to run after the mirage of sensual pleasures of the world and eventually become restless and unhappy. But the moment he experiences the Divine Grace, all the terrible pains of 'samsara' arising out of delusion and infatuation will cease completely.

There is no use a 'jiva' calling himself that he is a devotee of Rama, Krishna, Sankara, Muruga, Guru etc., as long as his deeds and devotions are not acknowledged by his 'Ishta Devata' as pleasing to him and deserve his Infinite Grace, Light & Mercy; otherwise, it is as good as jumping half the well ! God is not pleased with a man's wealth, caste, learning, skill, enterprise, intelligence, renown, beauty, bodily and mental vigour as He is pleased with a man's Devotion and Service to Humanity without ego.

There are nine forms of Devotion to please Sri Rama and deserve his Grace and Mercy and become dear to him which he has expounded an old Bhil tribal woman, Sabari (according to Adhyatma Ramayanam and Ramacharita Manasam of Saint Tulsidas). Let us now attentively hear Sri Rama's own words ! "I recognize no other kinship except that of Devo-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

tion. Despite caste, creed, lineage, piety, reputation, wealth, physical strength, accomplishment and ability a man lacking in Devotion is of no more worth than a cloud or river without water. Now I narrate to you the nine forms of Devotion which is most pleasing to me; listen carefully and cherish them in your heart.

(1) The first in order is Satsanga of fellowship with the saints.

(2) The second is fondness for hearing or narrating My stories.

(3) Humble service to the lotus feet of Guru is the third form of devotion.

(4) Singing my praises guilelessly.

(5) Muttering my Name (Rama Nama or Manthra) with unwavering faith, revealed in the Vedas and Sastras.

(6) Practice of self-restraint and virtuous conduct.

(7) Seeing the world full of Me ("Sarvam Ramamayam pasyantham") and reckoning the saints as even greater than Myself.

(8) Remain contented with whatever one gets and never think of other's faults.

(9) This form of devotion demands that one should cherish implicit faith in God without exultation or depression in prosperity or adversity and avoid duplicity in one's dealings.

Whoever possesses 'any one' of these nine forms of Devotion, man, woma or any other sentient of insentient creature is MOST DEAR TO ME."

Let us therefore sincerely and faithfully practise 'any one' of these Devotions and become MOST DEAR TO THE LORD OF SITA, the Ocean of Mercy, Grace. Light, Joy,. Prosperity and PEACE.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Phone : 68016 & 41157 Cable : GLOBAL, KANPUR

KHAGESH ENTERPRISES

EXPORTERS AND MANUFACTURERS
7/175 Swaroop Nagar
Kanpur-208002
(INDIA)

Office :
GIRDHAR BHAWAN
HATIA, KANPUR-208001
(INDIA)

Branch Office :
353 'MANIMAHAL' 3rd Floor
Kalbadevi Road
BOMBAY-400002
Phone : 315589

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

WITH BEST COMPLIMENTS
FROM

SOUTH EASTERN ROADWAYS

Head Office :

94, Chittaranjan Avenue, CALCUTTA-12

More than 300 Branches all over India

3/5, Asaf Ali Road, NEW DELHI-1

In Association With

AIR TRANSPORT CORPORATION

&

ROAD TRANSPORT CORPORATION

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

GRAM : NANDNANDAN Phone : 314704, 316336

HIGHWAY CARGO CORPORATION

Cargo Movers & Transport Contractor

13/4, Syed Sally Lane,
CALCUTTA-700007
Dial : 34-1017
Gram : PROMENSAFE

134, Thambhu Chetty St.
MADRAS—1
Phone : 27700

1915, Sirkiwalan, Hauz Qazi
DELHI-110006
Phone 263127
Gram : PROMPTSAFE

4, Malharrao Wadi, 3rd Floor,
Kalbadevi Road,
BOMBAY-400002

With Best Compliments

FROM

BRITISH PHARMACEUTICAL LABORATORIES

Manufacturers of Pharmaceuticals

BOMBAY—2,

BPL

Sole Distributors :

Messrs

BIPCO SALES CORPORATION,

ANAND BHAWAN, 2nd FLOOR,
Princess Street,
BOMBAY—2

Stockists :

Messrs.

BENJAMIN & SADKA,

ANAND BHAWAN,
Princess Street,
BOMBAY—2.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हरिकिशनदास अग्रवाल द्वारा विरचित

संक्षिप्त रूपमें आधुनिक ढंगसे आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित करनेवाली जीवनोपयोगी पुस्तकें

१. संसार का सार ···· ३–००
२. ज्ञान साधना ··· ३–००
३. विज्ञान से ज्ञान ··· १–००
४. वेदान्त नवनीत ··· ३–००
५. वेदान्त का सरल बोध २–००
६. आध्यात्मिक पिक्टोरियल (हिंदी व अंग्रेजी) ४–००
७. आध्यात्मिक डायरी–१९७६ ···१०–००
८. आध्यात्मिक चित्रावली (हिन्दी-इंग्लिश) पाकेट बुक ··· ६–००
९. मुमुक्षु (शिक्षाप्रद-उपन्यास) ५–००
१०. मनकी शांति (पद्य) अंग्रेजी मूल रचना 'पीस ऑफ माइंड' का हिन्दी अनुवाद। ··· ४–००
११. हमारी परंपरा ··· २–००
१२. आराम सुख शांति और आनंद ··· १–००
13. Ease Peace Happiness & Bliss 00–25
१४. अपनी ओर इशारा १–००
१५. व्यावहारिक जीवन और परमात्मा ··· १–००
१६. श्मशान यात्रा ··· १–००
१७. मेरे १०८ गुरु ··· ३–००
१८. सजगता ··· १–००
१९. अविरोध-निरोध और स्वबोध ··· २–००
२०. वेदान्त का वैज्ञानिक मनन २–००
२१. चिंता और निश्चिंतता २–००
२२. मन के पार ··· १–००
२३. घर-घर की समस्या २–००
२४. पीस ऑफ माइण्ड ··· ५–००
२५. क्वायटर मोमेण्ट्स २–००
२६. मनन योग्य बातें ··· १–००
२७. जाग्रत-जाग्रत ··· ०–५०
२८. जाग रे जाग ··· ४–००
२९. उनके सान्निध्य में २–००
३०. आधुनिक वेदान्त ··· २–००
३१. अध्यात्म नवनीत ··· २–००
३२. आँखों देखी ··· २–००
३३. बात बात में बात ··· ३–००
३४. साधना शिविर ···· ३–००
३५. ज्ञान प्रेम ··· १–००
३६. 'मनन' आध्यात्मिक मासिक (वार्षिक शुल्क) ··· ६–००
३७. अन्तर्ज्योति ···· २–००
३८. खेती और परमात्मा ५–००

ग्राहक आर्डर देनेसे पहले अपने शहरके पुस्तक विक्रेताओंसे पता कर लें

ग्राहक एवं एजेन्ट्स, पत्र व्यवहार करें।

तुलसी मानस प्रकाशन

गुप्ता मिल्स इस्टेट, रे रोड, बम्बई–४०००१० फोन: ३९१८३१.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सच्चिदानन्द अद्वय

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज के उपदेश

सत्—आत्मा सत् है।

(i) मरो मत
(ii) मारो मत
(iii) जीवो
(iv) जीने दो

चित्—आत्मा चेतन ज्ञानस्वरूप है।

(i) बेवकूफ बनो मत
(ii) बेवकूफ बनाओ मत
(iii) ज्ञान प्राप्त करो   जानो)
(v) ज्ञान दान करो (जानने दो)

आनन्द—आत्मा आनन्दस्वरूप है।

(i) दुःखी होओ नहीं
(ii) दुःख दो नहीं
(iii) स्वयं सुखी रहो
(iv) दूसरोंको सुखका दान करो

अद्वय—आत्मा एक है।

(i) अपनेको सबसे अलग मत करो फूटो नहीं)
(ii) समाजमें फूट डालो नहीं
(iii) सबसे मिलकर रहो
(iv) सबको मिलाकर रखो

सत्साहित्य - प्रकाशन ट्रस्ट
'विपुल' २८/१६ बी० जी० खेर मार्ग
बम्बई—४००००६
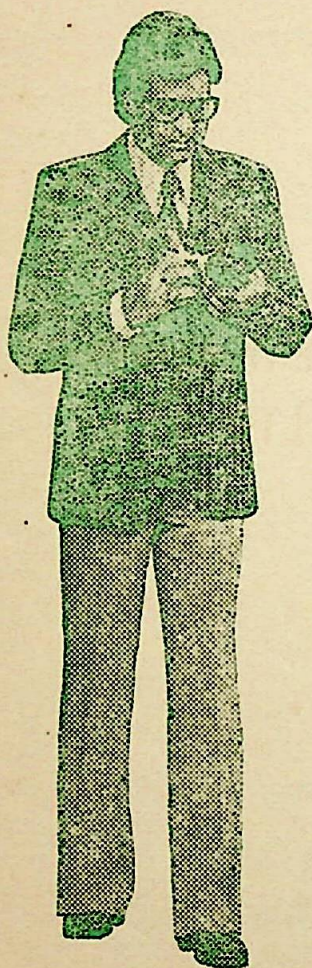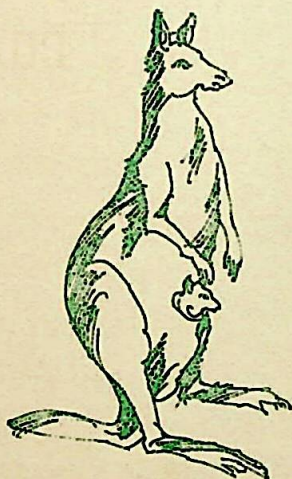
CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Phone : 22-0713
23-5804
22-4061

Gram : ROCKETPLY
CALCUTTA.

WOOD CRAFT PRODUCTS LIMITED.

Registered Office :

9/1, R. N. Mukherjee Road
CALCUTTA–700001

Manufacturers & Exporters :

"Rocketply" Commercial Plywood, Decorative Plywood
Block Board & Flush Doors.

"Rocketply" Embroideries

"Coochbehar Chest" Teachest Panels.

Plywood Works
P. O. Jeypore, Dist. Dibrugarh (Upper Assam)

Calcutta Plywood Mfg. Co.
P. O. Ledo, Dibrugarh (Upper Assam)

Mikir Hills Saw & Plywood Factory
P. O. Diphu, Dist. Mikir Hills (Assam)

Embroidery Works
P. O. THANA (MAHARASTRA)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

While purchasing cotton cloth, yarn hessian, sacking, carpet backing and other Jute & Cotton products, please insist on quality production.

We are always ready to meet the exact type of your requirement.

New Gujrat Cotton Mills Limited.

18 A, Brabourne Road
CALCUTTA–1

Phone : 22-1024
22-0734
23-7906
Telex : 021-2196

COTTON MILLS :

Unit No. 1–Naroda Road, Ahamedabad.
Unit No. 2–Outside Dariapur Gate, Ahamedabad

JUTE MILLS :

Kanoria Jute Mills,
Sijberia, P.O. ULUBERIA
Dist. Howrah (W.B.)

SPINNING MILLS :

Shree Hanuman Cotton Mills
Fuleshwar, P. O. ULUBERIA
Dist. Howrah (W. B.)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हर कार्य में ईश्वर का ही स्मरण करो

कुछ ऐसे हैं जो ईश्वरोपासना में विश्व को भुला देते हैं, कुछ ऐसे दुनियादार हैं जो ईश्वर को ही भूल जाते हैं पर जे०के० में हम हर काम में ईश्वर का स्मरण करते हैं और यही हमारी सफलता की कुन्जी है।

कर्म ही पूजा है"—जैसे तथ्य को चरितार्थ करने के लिए हमने अच्छा वातावरण ही उत्पन्न नहीं किया अपितु ऐसे पुण्य स्थलों का निर्माण तथा सामाजिक एवं धार्मिक संगठनों का गठन भी किया है।

इस प्रकार हमने आध्यात्मिक, नैतिक एवं बन्धुत्व की भावना को लिये हुये जीने की कला सीखने में योगदान किया है।

जे.के. ऑरगनाइज़ेशन

राष्ट्रीय दक्षता एवं व्यवसायिकता का सामंजस्य

सत्साहित्य-प्रकाशनट्रस्ट, बम्बईके लिए विश्वम्भरनाथ द्विवेदी द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा आनन्दकानन प्रेस, मीके. ३६/२० वाराणसीसे मुद्रित।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi